Con. 3. XI.9.49
320

अंक 11
संख्या 9

बुधवार
23 नवम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ
संविधान का मसौदा–(जारी) 3997-4061

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 23 नवम्बर, सन् 1949

भारतीय संविधान सभा, कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–(जारी)

***श्री अरि बहादुर गुरुंग** (पश्चिमी बंगालः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसौदा समिति के प्रधान को बधाई देने में मैं अपने सहयोगियों का साथ देना चाहता हूं, कि उन्होंने इस महान कार्य को सफलता से पूरा किया है। मुझे केवल कुछ बातें कहनी हैं। पहली बात तो यह है कि संविधान की यह आलोचना कि उसमें समाजवाद की स्थापना का उपबन्ध नहीं है उतनी ही अप्रासंगिक है जितनी यह शिकायत व्यर्थ है कि उससे तानाशाही का मार्ग खुल जायेगा। लोकतन्त्र की असली कसौटी लोगों को ही यह निश्चय करने का अधिकार देना है कि वे किस प्रकार का शासन चाहते हैं। तानाशाही या समष्टिवादी साम्यवाद का प्रश्न तो पूर्णतः इस बात पर निर्भर रहेगा कि वे किस प्रकार संविधान को क्रियान्वित करेंगे। संविधान में लोगों की इच्छा के अनुसार लगातार बहुत से रूपभेद होंगे। संविधान में ऐसे उपबन्ध ही रखे गये हैं। श्रीमान, मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूं कि संविधान एक पवित्र सी चीज़ है। जो भावी संतति को प्रेरणा देता है। यह अपने निर्माताओं के विश्वास और जीवन-दर्शन का प्रतीक होता है। इसे परखने के लिये, किसी को भी विविध देशों के संविधानों पर दृष्टिमात्र डालनी होगी। दूसरे शब्दों में, संविधान जनता की सर्वोच्च इच्छा का प्रतिबिम्ब है कि वे कि प्रकार की शासन-व्यवस्था चाहते हैं। यद्यपि संविधान देश की विधि बन जायेगा, परन्तु उसमें कोई पवित्रता की भावना नहीं होगी क्योंकि उसमें रूपभेद हो सकेंगे जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं। वर्तमान परिस्थितियों में, सब व्यवहारिक प्रयोजनों के लिये यह संविधान एक नमूना है जो भारत में रहने वाले लोगों की विभिन्न आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त है।

मैं नागरिकता सम्बन्धी अनुच्छेद 5 का निर्देश करना चाहता हूं। जिस वर्ग का मैं हूं वह इसे अत्यधिक महत्व देता है, और मैं अनुभव करता हूं कि यहां एक उल्लेख कर देना मेरा कर्तव्य है कि गुरखों की कुल आबादी में से एक तिहाई लोग भारत में आकर बस गये हैं। जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, एक करोड़ में से, लगभग 67.5 लाख नेपाल में हैं और शेष भारत में बस गये हैं और यहां रहने वाले गुरखा अधिकांश में उन सैनिकों के वंशज हैं जिन्होंने भारत में कई

---

* इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अरि बहादुर गुरुंग]

युद्धों में भाग लिया। हम अनुच्छेद 5 के अधीन नागरिकता के उसी अधिकार का दावा करते हैं, यदि हम उसमें उल्लिखित सब कर्तव्यों को पूरा करें। कुछ समय पूर्व, वर्ष के आरम्भ में, मैं जब गुरखाओं के विषय में बोला था तब मैंने कहा था कि उन्हें पिछड़ी हुई जातियों की श्रेणी में रखना चाहिये। मेरा कहना यह है कि पिछड़े हुए वर्गों के लिये सेवाओं के विषय में विशेष उपबन्ध होना चाहिये था, किन्तु दुर्भाग्य से संविधान के अन्तर्गत ऐसे विशेषाधिकार केवल अनुसूचित जातियों आदिमजातियों और आंग्ल भारतीयों को ही दिये गये हैं, यद्यपि अनुच्छेद 16, कंडिका (4) में लिखा है:

> इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिसका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के रक्षण के लिये उपबन्ध करने में कोई बाधा न होगी।"

दूसरे शब्दों में, यह एक हाथ से देना है और दूसरे से वापस ले लेना है, यह उन लोगों के साथ सबसे बड़ा अन्याय है जो बहुत पिछड़े हुए हैं, फिर भी उन्हें अनुसूचित जातियों या आदिम जातियों की श्रेणी में होने का विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। मुझे सच्चे हृदय से आशा है कि भावी संसद, जिसके सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जायेंगे, इस भूल को सुधारेगी। भारत की कुल जनसंख्या में लगभग नब्बे प्रतिशत लोग पिछड़े हुए हैं और वे लोग भविष्य में अपने प्रतिनिधियों के द्वारा, देखेंगे कि यह संविधान कैसे क्रियान्वित होता है।

संविधान में शक्तिशाली केन्द्र रखने पर प्रबल आलोचनाएं हुई हैं। मैं अनुभव करता हूं कि विद्यमान परिस्थितियों में शक्तिशाली केन्द्र रखने के सिवा कोई और चारा ही नहीं है।

इस संविधान में अनुच्छेद 3 और 4 तथा 391 के विषय में मुझे पश्चिमी बंगाल के सम्बन्ध में कुछ बातें कहनी हैं। जैसा कि आप जानते हैं, श्रीमान, रेडक्लिफ पंचाट के पश्चात दार्जिलिंग और जलपेगुरी के दो जिले पश्चिमी बंगाल से बिल्कुल काट दिये गये हैं। भारत के उत्तरी सीमान्त की प्रतिरक्षा के दृष्टिकोण से, यह एक ऐसा मामला है जिस पर भारत सरकार को तत्काल ध्यान देना चाहिये। चीन की कुमिनटांग सरकार समाप्त होने वाली है, जिसे भारत का पड़ौसी तिब्बत भी, समाचारों के अनुसार, साम्यवादी षड्यंत्रों का अड्डा बन रहा है। सिक्किम का राज्य और दार्जिलिंग का जिला तिब्बत को भारत संघ से मिलाता है, और आसाम, जो भारत-संघ का पूर्वतम सीमान्त है, एक संकीर्ण भूखंड द्वारा भारत से जुड़ा हुआ है जिसमें दार्जिलिंग जिले तथा जलपेगुरी के भाग शामिल हैं। इन क्षेत्रों को तथा कूच बिहार राज्य को, उनके सामरिक महत्व के कारण, मजबूत बनाना और उनका सुसंगठन करना आवश्यक है।

दार्जिलिंग और जलपेगुरी के जिलों का, जो पश्चिमी बंगाल के उत्तरतम जिले हैं, शेष पश्चिमी बंगाल से कोई सम्पर्क नहीं है, क्योंकि पूर्वी पाकिस्तान बीच में आ जाता है। इस बात से साधारण समयों में भी कई प्रशासकीय असुविधाएं उत्पन्न

हो जाती हैं और आपात के समय तो वे बहुत ही बढ़ जायेंगी। सीमान्त क्षेत्र में यदि ऐसी असुविधाओं को जारी रहने दिया गया तो उनसे गम्भीर जोखिम है। पश्चिमी बंगाल के इन दो जिलों के विषय में यह बात कहने का मेरा उद्देश्य यह है कि यदि हम भारत के मानचित्र को देखें तो हमें पता लगता है कि बिहार और आसाम को मिलाने वाली एक संकीर्ण सी भूखंड की पट्टी है, अर्थात् दार्जिलिंग और जलपेगुरी के जिले हैं। पाकिस्तान भारत के हृदय पर कृपाण के समान खड़ा है। ईश्वर न करे, यदि दुर्भाग्य से पाकिस्तान और भारत के बीच कभी कोई बात हो जाये, तो आसाम को बहुत कम समय में काट दिया जा सकता है, क्योंकि हिमालय के उत्तरी भाग अगम्य हैं; और इन्हीं क्षेत्रों पर सरकार द्वारा तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

***श्री के. हनुमन्थैय्या** (मैसूर राज्य): विमान यात्रा तो हो सकती है।

***श्री अरि बहादुर गुरुंग:** आपके सुझाव के लिये बहुत धन्यवाद, किन्तु वह सब तो हमारी शक्ति पर निर्भर है। वास्तव में आधुनिक युद्धों में विमानों में बमबारी में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। अन्तिम संग्राम, फिर भी, भूमि पर ही हुआ और जीता गया। यदि आप सब युद्धों के, विशेषत: प्रथम महायुद्ध तथा गत महायुद्ध के इतिहास को पढ़ें, तो पता लगेगा कि भाग्य का अन्तिम निर्णय थल सेना ने ही किया। विगत युद्ध में शायद हिरोशिमा पर अणुबम से ही भाग्यनिर्णय हो गया हो, किन्तु वह क्रूरता थी, और यदि युद्ध होने हैं तो वे भूमि पर ही होने चाहिये। मैं अनुभव करता हूं, श्रीमान, कि यदि आपात उत्पन्न हो जाये तो जो आयोग नियुक्त हो उसे इन मामलों पर विचार करना चाहिये जो मैंने बताये हैं, क्योंकि ये दो जिले, दार्जिलिंग और जलपेगुरी, शेष पश्चिमी बंगाल से पूर्णत: कट गये हैं। अब कलकत्ता से दार्जिलिंग को सामान भेजना हो तो बिहार के द्वारा भेजना होता है। अवमूल्यन के कारण भाड़े (प्रथम श्रेणी) की भी कठिनाई हो गई है। कलकत्ता से सिलिगुरी का किराया लगभग 50 रुपये हैं, पर सिलिगुरी से कलकत्ता को 72 रुपये देने पड़ते हैं और सिलिगुरी से कलकत्ता को सामान भेजने में बहुत कठिनाई होती है। एक ही प्रांत में हमें ऐसी कठिनाइयां होती हैं, अत: मेरा सुझाव है कि इन दो जिलों के विषय में कुछ न कुछ करना ही होगा; या तो उन्हें शेष पश्चिमी बंगाल से जोड़ देना होगा या कोई और व्यवस्था करनी पड़ेगी। मुझे ये ही बातें कहनी हैं। श्रीमान, आपका बहुत धन्यवाद है।

ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर (पूर्वी पंजाब: सिख): साहब सदर, अपने दूसरे दोस्तों की तरह मुझे भी यह कहने में झिझक नहीं है कि स्वतन्त्र भारत का यह विधान सचमुच एक शानदार दस्तावेज है। मैं समझता हूं कि यह एक समुद्र है और साथ ही मुझे विश्वास है कि हर गोताजन के लिये यह मुश्किल है कि इस समुद्र में से अच्छे अच्छे मोती निकाल सके और उनकी पहचान कर सके। जिन हालात में यह दस्तावेज़ तैयार किया गया है उनको मद्देनज़र रखते हुये यह कहना जरूरी है कि ऐसा अच्छा विधान बनाना बड़ा ही मुश्किल था। बहुत से अहम सवालात सामने थे और उनको हल करने में बड़ी बड़ी मुश्किलात दरपेश थीं। मसलन माइनारेटीज प्राब्लम एक बड़ा अहम सवाल था। देश में जो हालात थे उनकी मौजूदगी में इस सवाल को हल करना एक बड़ा मुश्किल काम था। मगर जिस खूबी से इसका फैसला किया गया है वह वाकई काबिले कदर है। जुदागाना इन्तेखाबात हमारे देश के लिये एक ऐसी लानत थी जिसने देश के हर

[ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर]

एक काम की तरक्की में रुकावट पैदा की हुई थी। जब जब भी इसके हल के बारे में सोचा गया तो यही जुदागाना इन्तेखाबात सबसे बड़ी रुकावट साबित हुए और जब जब भी इसके इलाज के बारे में कदम उठाये गये तो यह मर्ज़ बढ़ता ही गया। "मर्ज़ बढ़ता ही गया, ज्यूं ज्यूं दवा की के मिसदाक यह बीमारी बढ़ती ही चली गई।

हमारे पंजाब के मशहूर शायर डॉक्टर इकबाल ने कहा है:—

"मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा।"

मगर इस सेपरेट एलक्टोरेट के उसूल ने न सिर्फ यह कि शायर के इस ख्वाब को पूरा न होने दिया बल्कि कहने वाले खुद ही मजबूर हुये कि वह किसी न किसी ढंग से उसी रौ में बह जायें जो कि जुदागाना इन्तेखाबात की वजह से शुल्क में पैदा हो चुकी थी यानी अलायहदगी की स्कीमों में मददगार हों। अखीर पर डॉक्टर इकबाल ने अंग्रेज़ को गोया एक किस्म की मोहलत दे दी और घबरा कर गुस्से में कहा:

"निशाने बर्गों गुल तक भी न छोड़ इस बाग में गुलचीं,
तेरी किसमत से रज्म आराइयां हैं बागबानों में।"

यानी ऐ गुलचीं! तू हमारे इस बाग के फूल तो क्या पत्ते भी न छोड़ क्योंकि तेरी किसमत से बागवान जो हैं वह आपस में ही लड़ रहे हैं। इस लिये तुझे मोहलत है कि तू इस बाग के फूल और पत्ते सब उड़ा ले और इसको वीरान कर दे।

इन जुदागाना इन्तेखाब की वजह से बहुत ही बेइत्तफ़ाक़ी हमारे देश के अन्दर ही है और मजहबी झगड़े हुए हैं। अब जिस दिलेरी से जुदागाना इन्तेखाब हटाया गया है मैं समझता हूं कि वह इस विधान की बुनियादी खूबियों में से एक बड़ी खूबी है। इस विधान में से सपरेट एल्कटोरेट को हटा दिया गया है और मजहबी बिना पर इसमें कोई भी रेज़र्वेशन नहीं रखा गया। मैं यह समझता हूं कि यह बातें देश के आदर्श को ऊंचा बनाने में मददगार साबित होंगी। मुझे यह कहने में कोई दरेग़ नहीं है कि इस बात का आसानी से हल होना मुश्किल मालूम होता था क्योंकि माइनारेटीज़ में जिस तरह की बेएतबारी पाई जाती थी इससे मालूम हेाता था कि इस मामले का हल होना बहुत ही कठिन है। मैं यह समझता हूं कि यह हमारे प्राइम मिनिस्टर पंडित जवाहरलाल नेहरू और हमारे डिप्टी प्राइम मिनिस्टर सरदार पटेल और हमारी इस विधान सभा के प्रेसीडेन्ट राजेन्द्र प्रसाद जी के परसनल रसूख और डिसायसिवनेस (decisiveness) का नतीजा है। और इन तमाम लीडरों का जिन्होंने कि मुल्क की आजादी के लिये काम किया है यानी हमारे आनरेबिल मौलाना अबुल कलाम आजाद और दूसरे नेताओं के रसूख व असर से यह नतीजा निकला है। माइनारेटीज को उन पर एतबार था और उन्होंने इसका फैसला करने में जो मेहनत की उसी का यह आज हम नतीजा देखते हैं। हमारे इस विधान में जुदागाना इन्तेखाब की लानत को साफ पर दिया गया है और इसके अलावह रेजर्वेशन का मामला भी तय हो गया है। माइनारेटीड प्राब्लम के लिये

जो एडवाइजरी कमेटी बनी थी उसके प्रसीडेन्ट सरदार पटेल थे। सरदार जी का असर, रसूख, तदब्बुर और दृढ़ इरादा इसमें ज़्यादा काम आया और इस विधान में सेपरेट एलक्टोरेट मामले को साफ़ कर दिया गया और मैं फिर दोहराता हूं कि यह एक बड़ी ही खूबी है, जिसने कि हमारे इस विधान को चमकाया है।

कुछ बातें मैं विधान के मुतालिक और कहना चाहता हूं। चूंकि यह हमारे स्वतन्त्र भारत का विधान है। इस विधान का जनता के साथ ताल्लुक है। इसलिये यह विधान विधान ही नहीं है बल्कि इस विधान के जो दफ़ात हैं उन्होंने हमारे लोगों के मारल को भी ऊंचा रखना है। इसलिये मैं समझता हूं कि इस विधान में और दूसरे किसी विधान में फ़र्क़ ज़रूर होना चाहिये। अंग्रेज़ का यह तरीक़ा रहा है कि कोई बात जो वह न देना चाहते थे तो वह लफ़्ज़ों के हर फेर से एक हाथ से देते थे और दूसरे हाथ से वापस ले लेते थे। यानी जो काम के दफ़ात या चीज़ें होती थीं उनके आख़िर में प्रोवीज़ो (proviso) के ज़रिये से वह कन्डीशन लगाते थे जिसकी वजह से उसका असल मक़सद कभी भी पूरा नहीं होता था। अगर हमारे इस विधान में इस क़िस्म की कोई कमी है तो ऐसा नहीं होना चाहिये। या उसे दूर करना चाहिये। बाज़ मेम्बर साहबान ने फन्डामेन्टल राइट्स के चैप्टर पर कुछ नुक़ताचीनी की है, और बुनियादी हक़ूक़ पर लगाई गई पाबन्दियों के मुतालिक़ कहा है। मैं यह समझता हूं कि शायद सरकारी मज़बूरियों की वजह से कुछ न कुछ पाबन्दियों को ज़रूरी ख्याल किया गया है लेकिन मैं एक दो बातों की तरफ़ ज़रूर तवज्जो दिलाना चाहता हूं और यह कहना चाहता हूं कि इस क़िसम की पाबन्दिया नहीं होनी चाहिये। मसलन जायदाद और ज़मीनों के मुतालिक़, ज़मीनों और जायदाद के लेने देने पर जो आज़ादी की गई है कि हर एक को हक़ है कि वह किसी जायदाद को डिस्पोज़ आफ़ कर सके या खरीद सके। इसके बारे में जो मेन क्लाज़ है उसमें एक तरफ़ से तो यह हक़ दिया गया है मगर उसी दफ़ा की क्लाज़ 5 के प्रोवीज़ो के तहत जो पाबन्दी लगाई गई है उसमें कहा गया है कि उसके बारे में जो पहला कानून बना है वह कायम रहेगा। यह क्लाज़ किसी और सूबे पर असर करता हो या न करता हो लेकिन हमारे पंजाब पर यह बहुत असर करता है। पंजाब में एक इनतेकाल आराज़ी एक्ट बड़ी देर का बना हुआ है जिसे लैन्ड एलीनेशन एक्ट कहते हैं। इस एक्ट की रू से ऐसा होता है कि अगर एक आदमी जो वाकई तौर पर काश्तकारी का काम करता भी हो लेकिन ज़मींदार ज़ातों में से न हो वह ज़मीन नहीं खरीद सकता है। चाहिये तो यह था कि इस क़िस्म की पाबन्दी को एकदम उठा दिया जाता। लेकिन ऐसा नहीं किया गया है क्योंकि इस दफ़ा के साथ जो प्रोवीज़ो लगाया गया है उससे कुछ कनफ्यूजन सा पैदा हो गया है। इससे यह पता नहीं चल सकता है कि आया इसको उठा दिया गया है या नहीं। इस बात को साफ करना ज़रूरी है। पंजाब को इससे बहुत नुक़सान पहुंचा है। वहां के ज़मींदारों को भी इससे नुक़सान पहुंचता है। क्योंकि जिसके पास रुपया हो वह पाबन्दियों की वजह से ज़मीन नहीं खरीद सकता। इस लिये जो बेचना चाहें उन्हें कीमत कम मिलती है। पंजाब मुतवस्सित दरजे के ज़मींदारों का सूबा है। इस क़ानून से छोटे ज़मींदारों की बहुत छोटे और बड़ों का बहुत बड़े बन जाने की सम्भावना है। ज़्यादा वज़ाहत के लिये वक्त नहीं है। यह ग़ैर क़ुदरती चीज़ है। लिहाज़ा इस चीज़ को उड़ा देना चाहिये था। बुनियादी हक़ूक़ पर पाबन्दियों के सिलसिले में दूसरी बात है: दफा 22 क्लाज 3 की सब-क्लाज़ बी जिसके ज़रिये डिटेन्शन को क़ायम रखा गया है। मैं समझता हूं कि स्वतन्त्र भारत के विधान

[ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफिर]

में जैसे माननीय योग्य मेम्बर डॉक्टर कुंजरू साहब ने कहा है डिटेन्शन का तरीक़ा क़ायम नहीं रहना चाहिये। हम चाहते हैं कि लोगों में जनता में एतबार हो और जनता महसूस करे कि आज़ाद भारत के विधान में एक तबदीली हुई है और इस किस्म की बातें लोगों में विश्वास नहीं पैदा करेंगी कि सचमुच अब कोई तबदीली हो गई है अब हम आज़ाद हो गये हैं। और आज़ाद भारत का यह विधान बनाया जा रहा है। मेरे ख्याल में बगैर मुक़दमा चलाये किसी को भी डिटेन (detain) नहीं करना चाहिये। एक दो बातें मैं डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स के मुतालिक़ कहना चाहता हूं। उसमें जो प्रिंसिपल्ज़ दिये गये हैं वह बड़े ही शानदार हैं और मैं समझता हूं कि कांग्रेस गवर्नमेंट की शान के बिल्कुल शायान हैं। हम जनता से जो भी कहते रहे हैं वही सब बातें उनमें रख दी गई हैं। मगर दफ़ा 37 में उनकी कानूनी पोज़ीशन को उड़ा दिया गया है। अगर सरकारी मजबूरियों की वजह से दफ़ा 37 का क़ायम रखना ज़रूरी है, तो मैं समझता हूं कि दफ़ा 37 की मौजूदगी में डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स का जो चैप्टर है वह विधान में न हो तो अच्छा है। अगर यह नहीं हो सकता तो दो बातों के मुतालिक़ मैं ज़ोर दूंगा कि उन्हें डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स के चैप्टर से निकाल कर फ़न्डामेन्टल राइट्स के चैप्टर में रख देना चाहिये।

एक बात तालीम के मुतालिक़ कि 14 साल की उम्र तक जो लाज़मी तालीम डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स में रखी गई है मैं समझता हूं कि यह फन्डामेन्टल राइट्स में होना चाहिये। और दूसरी बात जो कम उम्र और जिन में काम करने की ताक़त नहीं है उनके मुतालिक़ यह कहा गया है कि उनसे काम नहीं लेना चाहिये उन पर पाबन्दी होनी चाहिये काम न लेने की। यह बात एक ज़रूरी बात है और मैं समझता हूं कि यह बात भी फ़न्डामेन्टल राइट्स के चैप्टर में होनी चाहिये।

आख़री बात जो मैं कहना चाहता हूं वह लैंगुएज के मुतालिक़ है। लैंगुएज का सवाल बहुत देर तक मुल्तवी रखा गया और मुझे खुशी है कि आख़िर में एक बात तय हो गई और ज़बान के मुतालिक़ हम फ़ैसला करने में कामयाब हो गये। तो अब इस फ़ैसले के बाद मैं समझता हूं कि 15 साल के अरसे तक अंग्रेज़ी का जारी रखना ठीक न होगा। मैं समझता हूं कि यह हमारी ग़ुलामाना ज़हनियत का इज़हार है। हम आज़ाद हो चुके हैं मगर हमारी हालत उस परिन्दे की तरह है जो ज़्यादा देर तक पिंजरे में बन्द रहने की वजह से आज़ादी का एहसास खो चुका हो। अब पिंजरा टूट चुका है और हम आज़ाद हो चुके हैं लेकिन चूंकि हम आज़ादी का एहसास खो चुके हैं इस लिये हम अपने आपको कैद समझते हैं। मैं इसलिये अंग्रेज़ी ज़बान का मुखालिफ़ नहीं हूं कि वह कोई बुरी जबान है बल्कि इसलिये कि हमको यह शोभा नहीं देता कि हम उस गुलामी के निशान को देर तक अपने देश में क़ायम रखें। अगर एक भाषा का फैसला हम कर पाये हैं तो मैं समझता हूं कि वह भाई जिनकी मिन्नत समाजत करके, दलील से, प्यार से, हम एक भाषा को मनवा चुके हैं, तो अब उनकी वजह से इतना लम्बा अरसा अंग्रेज़ी को जारी रखना उनको राज़ी करने की बहुत ज़्यादा क़ीमत देना है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा हो चुकी है हिन्दी में हमारा कारोबार चले। 15 साल की मियाद तो एक ऐसी मियाद है जो पुश्त भर (जनरेशन) की उम्र कही जा सकती है।

अव्वल तो मैं सेठ गोविन्द दास के ख्याल से मुत्तफ़िक़ हूं कि यह हमारा विधान हमारी राष्ट्रभाषा में होना चाहिये और उसी विधान को मुसतनद विधान माना जाये। मुझको इस सिलसिले में बाबू रामनारायण सिंह जी की बात बहुत ठीक मालूम होती है कि आया हम यह विधान अपने देश में बना रहे हैं या इंग्लैंड में। इसलिये मैं समझता हूं कि हम अपने विधान को अपनी राष्ट्र भाषा में चलायें और अभी से इस पर अमल करना शुरू करें। अगर यह अभी से शुरू नहीं हो सकता तो मैं समझता हूं कि यह 15 साल का अरसा कम करके 5 साल या ज़्यादा से ज्यादा 6 साल कर देना चाहिये। और हमको इस तरह तसल्ली हो सकती है और हम जल्दी से जल्दी इस गुलामी की ज़हनियत को छोड़ सकते हैं और हम अपनी देश की ज़बान में और राष्ट्र भाषा में सब काम कर सकते हैं।

एक बात मैं और कहना चाहता हूं और यह ठीक है, बाज़ भाइयों ने कहा है और जैसा कि सरदार हुकुम सिंह जी ने कहा कि मुलाज़मतों में जो रेज़र्वेशन उड़ा दिया गया है उससे सिखों को तसल्ली नहीं है। जैसाकि मैंने पहले ज़िक्र किया है जुदागाना इन्तेख़ाब के उड़ाने में सब माइनारेटीज़ मुत्तफ़िक़ हो गई। मुलाज़मतों में जो रेज़र्वेशन का ख्याल है मैं उसको मानता हूं कि इससे सिख कम्युनिटी में या किसी और माइनारेटी कम्युनिटी में कहीं न कहीं डिस्सेटिसफ़ेक्शन है यह माना जा सकता है लेकिन विधान में यह चीज़ रखना बाक़ी दफ़ात के साथ मुताबक़त नहीं खाता। रेज़र्वेशन उड़ा देने के बाद हर एक आदमी मैरिट पर लिया जायेगा और इस तरह से हर एक को अपने में मैरिट पैदा करने की ख्वाहिश पैदा होगी और मेजारेटी कम्युनिटी पर भी इस से एक और ज़िम्मेदारी आ जाती है और माइनारेटी कम्युनिटी भी इसे महसूस करेगी कि वह अपने मैं क़ाबलियत या मैरिट पैदा करने की कोशिश करे।

आख़िर में सिर्फ़ एक बात मैं और कहना चाहता हूं। बेशक़ डॉ. अम्बेडकर और उनकी ड्राफ्टिंग कमेटी के बाक़ी मेम्बरों ने यह जो मसविदा तैयार किया है उस पर उन लोगों ने बड़ी मेहनत की है और मैं समझता हूं कि इतने थोड़े अरसे में और देश के नामुवाफ़िक़ हालात में यह मसविदा तैयार किया है। इसलिये वह मुबारक़बाद के मुस्तहक़ हैं। मगर हम इसमें ठीक न होंगे और हम अपना फ़र्ज़ पूरा न करेंगे अगर हम अपने उन नेताओं और भाइयों को ख़िराज़ तहसीन न दें। मेरी मुराद अपने महान नेता महात्मा गांधी और उन बेशुमार और गुमनाम शहीदों से है जिन्होंने देश की आज़ादी के लिये कुरबानियां कीं, जिन्होंने बेज़र, बेघर, बेदर और बे परस्त होकर और अपना घर छोड़कर जिसे आज पाकिस्तान कहा जाता है इस देश की आज़ादी के लिये काम किया है। और मैं श्री जसपतराय कपूर जी के उन अलफ़ाज़ से मुत्तफ़िक़ हूं कि उन शरणार्थियों की तरफ़ भी ध्यान देना चाहिये। उन्होंने देश की जो खिदमत की है, देश की जो सेवा की है, वह काबिल क़दर है, उनकी तसल्ली लाज़िमी है। उनकी तसल्ली के बगैर हम इस विधान को चलाने में कामयाब पूरे तौर पर नहीं होंगे। इन अलफ़ाज़ के साथ मैं इस विधान की पूरे तौर पर ताईद करता हूं और मैं समझता हूं कि यह हर एक के लिये काबिल क़बूल होगा और इन हालात में इससे अच्छा विधान बनाना मुश्किल था।

***श्री आर.वी. धुलेकर** (युक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा इस सदन में प्रस्तावित संकल्प का समर्थन करने यहां आया

[श्री आर.वी. धुलेकर]

हूं। संविधान पर इन तीन वर्षों में बहुत लम्बी चौड़ी चर्चा हुई है और इसलिये अब संविधान की सब त्रुटियों को और अच्छाइयों को बताने का समय नहीं रहा है। मुझे संतोष है कि संविधान को—समूचे को—लिया जाये तो वह बहुत ही अच्छा है। सबको पता है कि दूध में 75 प्रतिशत से भी अधिक जल होता है और यदि संतुलन अच्छा हो तो उससे हमारी शक्ति की रक्षा होती है और हमें बल मिलता है उससे हम दीर्घायु होते हैं। इसलिये मैं त्रुटियों पर अधिक समय लगाने का प्रयत्न नहीं करूंगा। चाहे वे 75 प्रतिशत से भी अधिक हो, मुझे कोई चिन्ता नहीं है, मुझे तो यही चाहिये कि यदि जमाखाते में रक़म ज़्यादा हो और यदि हमारे बनाये हुए संविधान में वे सब सारतत्व हों जो इस जीते जागते भारत के लिये अपेक्षित हैं तो, मुझे विश्वास है कि यह अच्छा संविधान है। अतएव मैं उन विभिन्न बातों पर ध्यान दूंगा जो संविधान के पक्ष में हैं और मैं कहना चाहता हूं कि ये बातें, जो मैं आपके समक्ष पेश करने जा रहा हूं, इस देश को इस संसार में समृद्धि और सुख का लम्बा जीवन देने में लिये काफ़ी होंगी।

पहली बात यह है, कि हमने एक लौकिक राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। मुझे विश्वास है कि भारत में जो धर्म है वह सदा से लौकिक ही है। यह परस्पर विरोधी बातें दिखाई दे सकती है किन्तु मैं यह कहूंगा कि भारत में हमने कभी किसी व्यक्ति का अनुसरण नहीं किया और हम कभी किसी पुस्तक के अनुयायी नहीं बने। हमने कभी किसी पन्थ का अनुसरण नहीं किया, कभी किसी 'वाद' में विश्वास नहीं किया। वेदों और उपनिषदों में सब में लिखा है कि हम कभी किसी एक व्यक्ति या ग्रन्थ के अनुयायी नहीं हैं। वेदों के मंत्रों में हम देखते हैं कि जिस व्यक्ति ने किसी महान सत्य को कभी आत्मसात किया—वह मंत्र उसी के नाम से चलता है। हम इस देश में कभी भी रूढ़िवादी नहीं थे और हम कभी भी कट्टरपंथी थे ही नहीं। मैं कह सकता हूं कि लोग कहते हैं कि बौद्धमत भारत से निकाल दिया गया। मैं कहता हूं नहीं—बौद्धमत केवल 'मत' के रूप में भारत से चला गया किन्तु बौद्धमत की सब अच्छाइयां अब भी शेष हैं। हिन्दुमत में बहुत हद तक पशु-बलि की प्रथा आ गई थी। बुद्ध का यह प्रभाव शेष रहा कि पशुबलि और धर्मान्धता भारत से उठ गई। मुझे आशा है, श्रीमान, कि समय की गति के साथ, इस्लाम भी इस अर्थ में भारत से चला जायेगा कि भारत में कट्टरता नहीं रहेगी, और इस देश के मुस्लिमों में से धर्मान्धता मिट जायेगी। और इसलिये मुझे यह सोच कर प्रसन्नता है कि हमने यह सिद्धान्त रख दिया है कि इस देश पर किसी व्यक्ति, धर्म या मत या किसी भी वाद का शासन नहीं होगा।

दूसरी बात, जो बहुत बड़ा कार्य है, वह है वयस्क मताधिकार। प्रत्येक व्यक्ति, जो 21 वर्ष की आयु का है, जिसमें संविधान में उल्लिखित कोई अयोग्यता नहीं हैं, राष्ट्रपति के पद तक चढ़ने का अधिकारी है, जो सबसे बड़ा सम्मान है जो यह देश उसे दे सकता है और यह एक बड़ी चीज़ है बाज़ार में चलने वाला व्यक्ति सबसे ऊंचे स्थान पर चढ़ सकता है जो भारत उसे दे सकता है।

तीसरी बात यह है कि हमारे यहां ग्राम पंचायतें बनेंगी, जो निम्नतम आधार पर लोकतन्त्र का विस्तार है कुछ वर्षों से भारत में लोकतन्त्र चल रहा है, किन्तु

जनसाधारण ने कभी यह अनुभव नहीं किया कि उसे लोकतंत्र मिला है। जब हम अपने लोकतंत्र को गांवों में ले जाकर ग्राम-पंचायतें स्थापित करेंगे और जनसाधारण को स्वशासन देंगे तो मुझे विश्वास है कि भारत इंगलिस्तान या अमरीका से कहीं अच्छा रहेगा।

चौथी बात जो मैं संविधान के पक्ष में कहना चाहता हूं वह संयुक्त निर्वाचन है। अल्पसंख्यकों के प्रश्न को हटा दिया है। अब पृथक मतदाता-मंडल नहीं होंगे। प्रत्येक मनुष्य जो भारत में रहता है तथा भारत में पैदा हुआ है बराबर है और वह किसी धर्म या मत विशेष का अनुयायी है इस आधार पर वह राज्य से किसी पक्षपात का दावा नहीं कर सकता। मुझे यह बात सोच कर प्रसन्नता है कि अंग्रेज़ों द्वारा छोड़ा गया महान कलंक, महान अधर्म सब मिटा दिया गया है।

फिर पांचवीं बात यह है कि देशी राज्यों को मिटा दिया गया है। मुझे खुशी है कि नरेश, देशी राज्यों के शासक नरेश बहुत उदार निकले, और उन्होंने अपने आप की बलि देकर महानता दिखाई। मैं जानता हूं कि उस बलिदान के बिना, हमारे माननीय सरदार पटेल को सफलता नहीं मिलती और इसलिये मैं कहता हूं कि जब मैं सरदार पटेल की बुद्धिमानी और दृढ़ता की सराहना करता हूं तो मैं भारत के उन पुत्रों की, नरेशों, राजा महाराजाओं की भी सराहना करता हूं जो अपने आपको बलिदान करके इस देश के जनसाधारण के समान बन गये।

फिर, श्रीमान, छठी बात है, अन्तर्राष्ट्रीय शांति। हम अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिये प्रार्थना करते हैं। हम सदा उसमें विश्वास करते रहे हैं, और मुझे यह कहने में गर्व है कि भारत ने अपने राज्य क्षेत्र के बाहर कभी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया है, और मुझे इस बात पर प्रसन्नता है। सिकन्दर महान या सिकन्दर डाकू के समान भारत के किसी राजा ने किसी दूसरे देश पर कभी चढ़ाई नहीं की। नादिरशाह या महमूद ग़जनी या मौहम्मद ग़ौरी के समान भारत का कोई राजा किसी विजय या प्रदेश को प्राप्त करने के लिये देश के बाहर नहीं गया। उस बात पर मुझे प्रसन्नता है। अतएव जब हम कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति हमारा अन्तिम ध्येय है तो मैं कह सकता हूं कि समस्त संसार को हम पर विश्वास करना चाहिये। जब इंगलिस्तान या अमरीका कहता है कि वे शांति चाहते हैं तो उन पर विश्वास नहीं होता। सबको उन पर संदेह है, क्योंकि उन लोगों ने कभी अपने जीवन में यह सिद्ध नहीं किया कि उन्होंने जो कहा है वह सच है। इंगलिस्तान तथा अन्य देश अपने देशों से बाहर गये और अन्य देशों पर आक्रमण किया, उन पर हमला करके उन्हें लूटा। अतएव जब वे आज संयुक्त राष्ट्र संघ में जाकर कहते हैं कि उन्हें शांति से प्रेम है तो उन पर विश्वास नहीं किया जाता। मैं कहता हूं कि श्रीमान, कि भारत का विश्वास किया जायेगा और संसार में सबको कोई हमारी इस बात पर विश्वास कर लेगा कि हम अन्तर्राष्ट्रीय शांति चाहते हैं। जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू अमरीका गये, तब उनका ऐसा स्वागत क्यों किया गया? लोग हजारों लाखों की संख्या में उनका अभिवादन करने क्यों आये? इसका कारण यह है कि उनके पीछे एक महान इतिहास है। वे जानते थे कि वे ऐसे देश से गये थे जहां याज्ञवल्क, महात्मा गांधी, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द और सर रविन्द्रनाथ ठाकुर पैदा हुये थे। वे लोग भारत से बाहर गये थे—तलवार लेकर नहीं, शांति का लक्ष्य लेकर गये थे। और इसलिये जब पंडित जवाहरलाल नेहरू अमरीका गये और उन्होंने कहा कि हम शांति के समर्थक हैं तो उनका विश्वास किया गया।

[श्री आर.वी. धुलेकर]

अब, संविधान के पक्ष में सातवीं बात यह है कि अब अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र में होंगी। यह बहुत अच्छी वस्तु है। आरम्भ में शब्द यह हैं "भारत एक संघ होगा।" मैं कहा हूं कि "संघ" सुखद शब्द नहीं है। संघ का सदा यही आशय और भाव होता है कि पहले विसंगठन था, अतएव हम अब संगठित हो रहे हैं। मैं कहता हूं कि वह सुखद शब्द नहीं है। किन्तु जब हम अवशिष्ट शक्तियों पर आये और हमारी सद्बुद्धि की विजय हुई तब हमने यह रखा कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र में सकेंद्रित होनी चाहिये। इसका अर्थ यह है कि हमारे यहां शक्तिशाली केन्द्र होगा और भारत सदा अविभक्त तथा प्रबल रहेगा।

फिर, श्रीमान, आठवीं बात यह है कि हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया है। कुछ लोग कह सकते हैं कि पन्द्रह वर्ष अंग्रेजी भाषा का शासन रहेगा। दूसरे कहते हैं, कि अन्याय हुआ है, क्योंकि हिन्दी भाषा को आज से भी लागू नहीं कर दिया गया। किन्तु मैं कहता हूं कि हमने जो प्रस्ताव पारित किया है वह एक महान विजय है। अंग्रेज भारत में दो सौ वर्ष से भी अधिक रहे, परन्तु उन्हें भारत से जाना पड़ा। इसी प्रकार, मैं अपने सब मित्रों को हिन्दी के प्रेमियों को, आश्वासन देना चाहता हूं कि अंग्रेजी भाषा भी एक दो वर्ष में ही भारत से चली जायेगी, और पांच वर्ष के पश्चात अंग्रेज़ी में लिखा कोई पत्र देहातों में पढ़वाना मुशकिल हो जायेगा। मुझे इस पर पूर्ण विश्वास है और इसलिए मैं अनुभव करता हूं कि चाहे कुछ भी निर्बंधन लगाये गये हों, वे ऐसे नहीं हैं कि हिन्दी को अपना उपयुक्त स्थान लेने से रोक सकें।

नौवीं बात जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं यह है कि कुछ लोग कहते हैं इस संविधान में समाजवाद या साम्यवाद के पक्ष में कोई बात नहीं है। मैं कहता हूं, श्रीमान, कि कोई भी 'वाद' चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, कट्टरता पैदा करता है। प्रत्येक वाद कट्टरता और धर्मान्धता का समानार्थक ही है। यदि हमारे संविधान में लिखा होता कि समाजवाद हमारा ध्येय है या साम्यवाद हमारा लक्ष्य है, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि चार पांच वर्ष में ही, हजारों कट्टर लोग देश भर में यह कहते फिरते कि इस संविधान का जो विरोध करेगा उसे मार डाला जायेगा और उसकी हत्या कर दी जायेगी। आप रूस जाकर देख क्यों नहीं आते? जो भी साम्यवाद का विरोधी है उसे कोई भी मार सकता है। इसलिये अपने सांविधानिक ध्येय में कोई भी वाद न रखकर हमने बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण बात की है। भारत अब किसी 'वाद' में नहीं है। अतः मुझे प्रसन्नता है कि हम इन 'वादों' में से साफ निकल गये हैं। हम किसी 'वाद' में विश्वास नहीं करते। हम अपनी वैयक्तिक बुद्धिमानी में, अपनी सामूहिक बुद्धिमत्ता में, अपने राष्ट्र की बुद्धिमानी में और संसार की बुद्धिमत्ता में विश्वास करते हैं। हमने सदा यही अनुभव किया है कि यदि हम 20, 50 या 100 व्यक्ति मिल कर बैठेंगे तो हम कोई ऐसी वस्तु की सृष्टि कर लेंगे जो किसी विगत, वर्मंमान या भावी 'वाद' से अच्छी होगी।

दसवीं बात यह है। इस संविधान में लोकतन्त्र के लिये पूरा क्षेत्र है। लोकतन्त्र क्या है? मैं उसकी परिभाषा करता हूं, एक शब्द में। लोकतन्त्र सहिष्णुता है। कोई व्यक्ति जो लोकतन्त्र की इस छोटी सी परिभाषा को नहीं समझ सकता वह कभी लोकतंत्री नहीं हो सकता है। कोई व्यक्ति, जो किसी समिति से बाहर निकल कर

असंतुष्टता का अनुभव करता है और यही राग अलापता रहता है कि उसकी बात नहीं सुनी गई और सदा शिकायत ही करता रहता है, मैं कहता हूं कि वह लोकतन्त्री नहीं है। जब दस व्यक्ति साथ मिलकर बैठते हैं या अपने दिमाग से सोचते हैं तो वे या तो सहमत होते हैं या असहमत। यदि वे किसी नतीजे पर पहुंचते हैं तो मेरा यह विचार है और विश्वास है कि यह लोकतन्त्रात्मक संकल्प है और उसका पालन होना चाहिये। मैं कहता हूं, कि जब हम 300 और उससे अधिक व्यक्ति यहां मिल कर बैठे, अपना दिमाग़ लगाया और एक संविधान बना डाला—हो सकता है कि मेरा संकल्प पारित हो गया और अन्य व्यक्ति अनुभव कर सकते हैं कि उनका संकल्प पारित नहीं हुआ, यह प्रश्न यहां नहीं है—यह सबके मिले जुले प्रयत्नों का फल है और इसलिये इसका पालन होना चाहिये। यह पवित्र है।

फिर, राष्ट्रपति का पद है। यह बहुत बड़ी वस्तु है। हमारे प्राचीन काल में भी और हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी हम सदा देखते हैं कि जब भी हम कोई धार्मिक विधि करते हैं, तो हम सर्वप्रथम सदा गणपति की पूजा करते हैं, जो विश्व का शक्तिशाली स्वामी है, और हम उसे कहते हैं कि वह बैठकर हमारे कृत्यों को देखे, हमारे कार्य में और धार्मिक विधि में पथ-प्रदर्शन करे। फिर हम उस विधि को करते हैं और अन्त में हम कहते हैं:

गच्छ गच्छ सर्वश्रेष्ठ,
इष्ट कार्य प्रसिद्ध्यर्थ पुनरागमनायच।
अर्थात् आपने इष्ट कार्य पूरा कर दिया है, कृपया जाइये, पर फिर भी आइये।

अत: उस पवित्र परम्परा पर चलते हुये, श्रीमान, मैं कहता हूं कि, अध्यक्ष महोदय, आपने हमारी कार्यवाही को चलाया है और हमें यह संविधान दिया है और अब मैं प्रार्थना करता हूं, श्रीमान, कि संविधान सभा के अध्यक्ष (President) के रूप में आप चले जायें, किन्तु संविधान के अध्यक्ष (राष्ट्रपति President) के रूप में, आप कृपया वापस आइये।

मुझे विश्वास है कि समस्त सदन की, मेरे साथ यही इच्छा है कि आप इस उच्च पद पर पुन: चुने जायेंगे।

***अध्यक्ष:** आप ऐसे मामलों की चर्चा न करें तो अधिक अच्छा हो।

***श्री आर.वी. धुलेकर:** अन्त में मैं, श्रीमान, आपको तथा डॉ. अम्बेडकर को हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूं। हमारे समक्ष जो कार्य था वह बहुत भारी था। मैं इसे 'हरकुलियन' कार्य नहीं कहना चाहता क्योंकि बहुत छोटा शब्द है। उन्होंने महान् पांडव भीम के योग्य कार्य किया है और अपने नाम—भीम राव अम्बेडकर—को सार्थक बनाया है—उन्होंने अपने नाम भीमराव के अनुरूप ही कार्य किया है—और उन्होंने इस कार्य को स्पष्ट दृष्टि से, स्पष्ट विचारधारा से और स्पष्ट भाषा से किया है। आदि से अन्त तक वे बहुत स्पष्ट थे। उन्होंने सदा विरोधी के विचारों को समझने का प्रयत्न किया और उन्होंने उनके साथ सहिष्णुता बरती और अपने भावों को सदा अत्यन्त स्पष्ट भाषा में रखना चाहा। हम उनके बहुत आभारी हैं।

[श्री आर.वी. धुलेकर]

मैं हमारे कांग्रेस प्रधान का भी—जो कुछ समय के लिये श्री कृपलानी थे और बाद में माननीय पट्टाभि सीतारामैय्या थे—बहुत आभारी हूं। परदे के पीछे दल के व्यक्ति के रूप में उन्हें कई बैठकें करनी पड़ीं और उन्होंने उन बैठकों को ऐसी सफलता से किया कि कांग्रेसजन मिल कर इस समूचे सदन की स्वीकृति के लिये ऐसे सुन्दर तरीक़े से संविधान बना सके। अतएव, मैं हमारे कांग्रेस प्रधान, पट्टाभि सीतारामैय्या का वैयक्तिक रूप से धन्यवाद देता हूं, और हमारा आभारयुक्त धन्यवाद सब सदस्यों को भी है जिन्होंने हमारे साथ सहयोग किया है।

अन्त में मैं, श्रीमान, मैं राष्ट्रपिता गांधी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि देना चाहता हूं। इन शब्दों के साथ मैं समाप्त करता हूं; ओम् शांति, ओम् शांति, ओम् शांति।

***डॉ. पी.के. सेन** (बिहार: जनरल): मैं अनुभव करता हूं कि मेरा अपने आप के प्रति और इस महान् सभा के प्रति यह कर्तव्य है कि इस महान् उपलक्ष्य पर कुछ शब्द कहूं जब कि हम यह संविधान देश और समस्त विश्व के सामने पेश कर रहे हैं।

अब तक यह संविधान एक काग़ज़ी लेख था और वह 26 जनवरी 1950 तक ऐसा ही रहेगा। फिर ऐसा अवसर होगा कि यह जीवन प्राप्त कर लेगा, क्योंकि काग़ज़ के संविधान से राष्ट्र के जीवनों पर, व्यक्तियों या समुदाय के रूप में, शासन और विनियमन नहीं होगा, वरन् उसके पीछे जनता की जो भावना होगी उससे वास्तव में विनियमन होगा, उसी से वह लोकतन्त्र स्थापित होगा जो हम सब स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस सदन के प्रांगण पर बहुत सी बातें हुई हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि संगठन की उस भावना को त्याग दिया गया है, जिससे लोकतन्त्र में सफलता प्राप्त हो सकती थी। मैं इससे सहमत नहीं हूं। सदन के प्रांगण में जो कटु विवाद हुए हैं, समय समय पर जो महान् मतभेद पैदा हुए हैं, उनसे केवल यही पता लगता है कि दृष्टि कोण का, विचारों का और मतों का अन्तर होते हुए भी, वे सब एक ही बात की ओर संकेत करते हैं कि वे सब पारस्परिक सद्भावना से बद्ध हैं, जिसे आप चाहें तो 'मध्यमार्ग' कह सकते हैं, और उन्होंने समन्वय की भावना ये यह 395 अनुच्छेदों का संविधान साथ मिल कर तैयार कर डाला है। जब यह जीवनयुक्त बन जायेगा, जब वह अमल में आ जायेगा, वह जीतीजागती वस्तु बन जायेगा, और इसलिये सब जीवित वस्तुओं के समान वह बढ़ेगा और उसका विकास होगा। हमें आशा करनी चाहिये कि वह कभी भी गलेगा नहीं, किन्तु जनता की वृद्धि और विकास के साथ उसका भी विकास और वृद्धि होगी। जनता और केवल जनता की इस संविधान को अच्छा बना सकती है, उसे वास्तव में लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये क्रियान्वित कर सकती है।

यहां संविधान के विषय में बहुत सी बातें कही गई हैं। किन्तु मैं फिर भी यही अनुभव करता हूं कि उन सब बातों के पीछे लगभग सब में एकता है, मतभेद नहीं है। इसे 'मध्यमार्ग संविधान' कहा गया है। खैर, 'मध्यमार्ग' ही बुद्धिमत्ता का सार है। यदि आप अपने दृष्टिकोण के साथ साथ विरोधी के दृष्टिकोण को भी देखने लगें, तभी आप संयुक्त हो सकते हैं—केवल संविधान निर्माण के लिये ही नहीं वरन् राष्ट्र के जीवन के विनियमन के लिये भी। अतएव यदि यह मध्यमार्गीय संविधान है तो मैं उसे गर्व की बात समझता हूं। आप अनुभव करते

हैं कि बहुत सी ऐसी बातें कर दी गई हैं जो सर्वथा क्रांतिकारी ढंग की है। आप अनुभव करते हैं कि आप बिल्कुल नये मार्ग पर हैं और यदि आप इन मूल बातों के विषय में सहमत हो सके हैं तो आपकी यात्रा विजय-यात्रा ही होगी।

सर्वप्रथम, हमने विधि द्वारा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया है।

फिर देशी नरेशों की समाप्ति है और इन सब रियासतों के एकीकरण का आश्चर्यजनक कार्य है।

फिर विशेष निर्वाचक वर्गों की समाप्ति है, स्थान-रक्षण की समाप्ति है और स्थान-रक्षण को समाप्त करने के उद्देश्य से कुछ अल्पसंख्यकों द्वारा अधिकारों का स्वेच्छा से समर्पण है। निस्संदेह कुछ विशेष मामलों में स्थान-रक्षण रखा गया है और वह सीमित अवधि के लिये है, किन्तु उसे हम सबने एकमत होकर न्यायपूर्ण और अच्छा उपबन्ध समझा है और स्वीकार किया है।

फिर केन्द्र और विविध अंगों अथवा प्रान्तों अथवा राज्यों के बीच सम्बन्धों को ठीक कर लिया गया है और हम देखते हैं कि वहां भी, विजय ही हुई है, यद्यपि दृष्टिकोणों का अन्तर हो सकता है; कुछ व्यक्तियों का यह खयाल है कि केन्द्र को अत्यधिक शक्ति दे दी गई है, और उसका अन्त वास्तव में तानाशाही की सर्वोच्चता में हो सकता है; दूसरी ओर कुछ लोगों का यह ख्याल है कि केन्द्र को और भी अधिक शक्ति मिलनी चाहिये थी।

किन्तु, जैसा कि मैं इसे समझता हूं मैं सच्चे हृदय से निवेदन करता हूं, हम ऐसे स्थान पर आ पहुंचे हैं, जहां फिर, संविधान के क्रियान्वित होने से ही पता लगेगा कि उसमें जो कुछ लिखा है वह कहां तक ठीक है। एक के बाद एक, कई माननीय सदस्यों ने सदन के प्रांगण में आगे बढ़ कर इसी बात पर अपना विश्वास और भरोसा प्रकट किया है कि केवल संविधान से ही उसका औचित्य सिद्ध नहीं होगा, वरन् संविधान और जनता दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव और प्रतिक्रिया इन सबसे अन्त में सिद्ध होगा कि संविधान सराहनीय है या निंदनीय।

फिर श्रीमान, मैं इस बात की ओर विशेष ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि सदन ने, कुछ मतभेदों के होते हुए भी, एकमत से निर्धारण किया कि समूचे भारत के लिये एक भाषा स्वीकार की जाये, चाहे मातृभाषा का लिहाज़ करना होगा, चाहे देश के कुछ विशेष भागों में प्रचलित अन्य भाषाओं का उचित ध्यान रखना होगा; किन्तु एक अखिल भारतीय भाषा और समस्त भारत के लिये अभिव्यक्ति का एक माध्यम बनाने का निश्चय सर्वथा एकमत से किया गया है।

आगे चल कर हम वयस्क मताधिकार को लेते हैं, और वयस्क मताधिकार के महासागर में अपनी नैया उतारने से पूर्व हमें ध्यान रखना चाहिये कि हम कैसे आगे बढ़ेंगे। आख़िर, हमारा लोकतन्त्र शिशु है और हमें अभी पता नहीं है कि जलयात्रा में क्या जोखिम तथा कठिनाइयां होती हैं, कैसे रेतीले तट होते हैं। हमें अभी पता नहीं है कि जब हम जोखिम में हों तब हमें अपने तटीय क्षेत्र को कैसे ढूंढना होगा; अत: संविधान सभा के सदस्यों तथा दूसरों के लिये यह अत्यन्तावश्यक है कि वे ऐसे प्रकार से कार्य करें कि यह संविधान जो वयस्क मताधिकार पर आधारित है, वास्तव में केवल सफल ही न हो वरन् समस्त विश्व के लिये आदर्श बन जाये।

[डॉ. पी.के. सेन]

अनेक बार इस बात का निर्देश किया गया है कि पंचायत-व्यवस्था ही आधार होना चाहिये था, वह पुराना विचार जो राष्ट्रपिता ने बहुत स्पष्टता से अभिव्यक्त किया कि पैंदे पर पंचायत होनी चाहिये और पंचायतों के चौड़े आधार पर जो लोकतन्त्र बने वह शंकु के समान होना चाहिये और वह शंकु लोकतन्त्र की पूर्णता हागी, उस विचारधारा पर चलना चाहिये था। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि वह अब भी क्यों नहीं हो सकता। जैसा कि मैं कह चुका हूं, वयस्क मताधिकार एक महासागर है और समुचित नौचालन द्वारा हमें यह पता लगाना है कि सुरक्षितता का स्थान कौन-सा है। मुझे सन्देह नहीं है कि शनैः शनैः यही पंचायत व्यवस्था आ आयेगी और उस लोकतन्त्र का आधार बन जायेगी जो हम स्थापित कर रहे हैं।

अन्त में, बहुत सी बातें हैं, बहुत विस्तृत चीज़ें हैं, जो मेरे मन में आती हैं, किन्तु मैं जानता हूं कि समय मूल्यवान है और मैं यथाशक्ति संक्षेप में बोलने का प्रयत्न करूंगा। आखिर, हमारा पथप्रदर्शक सिद्धान्त क्या है? वे सुरक्षितता के कवच कौन से होने चाहिये जिनसे हम जगत से लोकतन्त्र के आधार पर लड़ेंगे? वहां भी, राष्ट्रपिता ने, अनेक बार, अपने जीवन भर में, प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक शब्द में जो उन्होंने कहा, ये बातें सुझाई थीं—सत्य और स्वतन्त्रता। हम अपने आपके प्रति सच्चे नहीं हो सकते यदि हम दूसरों के प्रति सच्चे नहीं हैं। हम तब तक वैयक्तिक रूप में स्वतंत्र नहीं हो सकते जब तक प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी की स्वतन्त्रता का आदर सम्मान न करे। यदि हम सच्चाई और स्वतन्त्रता के इस सिद्धान्त की बुद्धिमत्ता का आदर सम्मान न करे। यदि हम सच्चाई और स्वतन्त्रता के इस सिद्धान्त की बुद्धिमत्ता के सार को सचमुच समझ लें, केवल तभी हम सफल होंगे, केवल तभी इस संविधान को हम जीवित वस्तु बना सकेंगे। इसका निर्देश किया गया है, अतः मैं इस बात को दोहराये बिना नहीं रह सकता कि हमारे में सच्चाई और स्वतन्त्रता में प्रशिक्षित सैनिक हैं, ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है जो हमारे पथप्रदर्शक बन सकते हैं और हमें सुरक्षितता के स्थान पर पहुंचा सकते हैं। इनमें से मैं उन्हें अलग नहीं करता जो नाममात्र के लिये मानो दूसरे दल में हैं—यहां कोई दल नहीं है। इस सैनिक दल में मैं मसौदा समिति को भी शामिल करता हूं जिसके प्रधान डॉ. अम्बेडकर हैं। इन माननीय सदस्यों ने निरन्तर कार्य किया है और हर सम्भव तरीके से संविधान सभा की ऐसे प्रसार से सेवा की है कि वे हमारे अधिकतम आधार के अधिकारी हैं और मैं इस समय उन भावों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। श्रीमान, आपको भी धन्यवाद देना आवश्यक है, जैसा कि प्रत्येक सदस्य प्रत्येक बार कहता है—यह पुनरावृत्ति दिखाई दे सकती है परन्तु यह अनिवार्य है। जिस प्रकार से आपने प्रत्येक व्यक्ति को, जो वाद-विवाद में भाग लेना चाहे, पूर्ण स्वतन्त्रता, स्पष्टता और अवसर दिया है, उस पर हम सच्चे हृदय से आपके आभारी हैं।

एक बात यह कर मैं समाप्त कर दूंगा। प्रायः यहां इस बात को संविधान पर एक कलंक बताया गया है कि ईश्वर या धर्म से सारा सम्पर्क ही मानो तोड़ दिया गया है, मानो यह ईश्वरहीन संविधान है, मानो इसे लौकिक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य कहने से यह सचमुच लौकिक अथवा ईश्वरहीन बन गया है। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि यह एक भ्रम है। हमने धर्म को नहीं मिटाया है जिससे मेरा आशय है भगवान् में, जो हमारे भाग्य को निश्चित करता है, मनुष्य का अंतरतम विश्वास और हमारे तथा हमारे सृजनहार के मध्य का वैयक्तिक सम्बन्ध। इसमें

उस अर्थ में धर्म को नहीं मिटाया गया है। इसमें धर्मों को मिटाया गया है जिसका अर्थ है धर्मों का आपसी संघर्ष। किन्तु यदि एक बार इस बात पर विश्वास कर लिया जाये, एक बार यह समझ लिया जाये कि सारे धर्म सच्चे हैं, सब धर्मों में केवल सत्यसार ही नहीं है वरन् सब धर्म ईश्वर के दिये हुए हैं और भगवान के प्रतीक हैं, तो क्या अभी एक धर्म और दूसरे धर्म के बीच कोई कठिनाई हो सकती है, कोई संघर्ष हो सकता है? और यदि ऐसा हो जाये, जब राष्ट्र यह समझ ले, तब 'लौकिक' शब्द को यथासमय संविधान से हटाया भी जा सकता है। क्योंकि फिर यह कहना, यह घोषणा करना अपेक्षित ही नहीं रहेगा कि किसी धर्म को, किसी विश्वास या मत को या किसी पूजाविधि को कोई अधिमान नहीं दिया जायेगा, इसलिये इसे लौकिक कहना आवश्यक हो गया है। किन्तु मेरा सच्चा विश्वास है कि जो भगवान हमारे भाग्य का निश्चय करता है वह हमारे ऊपर है और इस राष्ट्र के भविष्य का पथप्रदर्शन इसी संविधान के द्वारा करेगा जो केवल नाममात्र के लिये ही लौकिक है। यदि पारस्परिक समझौते की भावना होगी तो हम साथ चल सकेंगे। यदि मूल आधारों में ही अन्तर हो, तो यह अधिक अच्छा होगा कि दोनों दलों में संघर्ष हो जाना चाहिये—उसके बिना शायद कोई भलाई नहीं होगी। और यदि संघर्ष अनिवार्य हो मूल बातों के विषय में, आवश्यक चीज़ों के विषय में हो, तो हमें संघर्ष की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सुरों और असुरों के युद्ध में भी अमृत निकला था और विष निकला था उसे नीलकंठ ने पी लिया था जिससे कि उनकी सृष्टि विषहीन रहे। क्या हमें विश्वास नहीं है कि आज, जब कि हम इस संविधान को लागू करने जा रहे हैं, वही भगवान जो हमारे ऊपर है यहां उपस्थित है, और यदि कोई जोखिम हो या कोई बुरी बात हो जाये तो वही अवश्य विष को पी जायेगा और इस राष्ट्र को विषहीन बना देगा?

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय इस संविधान पर बहुत आलोचना हुई है और मसौदा समिति पर एक दोष यह भी लगाया कि उन्होंने 1935 के भारत शासन अधिनियम को रख दिया है और कुछ नहीं किया है। यदि मसौदा समिति के विरुद्ध यह आलोचना की जा सकती है तो मुझे यह कहना चाहिये कि यह बहुत अनुदारता है। दूसरी ओर, मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी अनुच्छेद को अपनाने से पहले मसौदा समिति ने संसार के समस्त संविधानों को देखने का कष्ट उठाया और सब संशोधनों पर ध्यान पूर्वक विचार किया—सैद्धान्तिक दृष्टि से भी और व्यवहारिक दृष्टि से भी। यदि उन्होंने किसी सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया है तो इसका यह कारण नहीं है कि वे भारत शासन अधिनियम 1935 में नहीं थे, यद्यपि वे सिद्धान्त व्यवहारिक थे और ठीक थे, किन्तु क्योंकि वे यहां वर्तमान परिस्थिति में व्यवहारिक रूप में लागू नहीं होते थे। मैंने लोगों को यह कहते हुए सुना है कि इस संविधान के अधीन प्रशासन से कुछ नहीं होगा, क्योंकि यह तो 1935 का भारत शासन अधिनियम ही है कुछ और नहीं, और हम उस अधिनियम के प्रशासन के परिणाम को देख चुके हैं। अतएव मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि यह विचार ग़लत है, बिल्कुल ग़लत है। यदि ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई किसी चीज़ में कोई अच्छी बातें हैं तो हम उन्हें क्यों छोड़ें? उनके उद्देश्य भिन्न हो सकते हैं, किन्तु उन्होंने जो कुछ भी किया, बाहर से उस में कोई भी बुराई नहीं थीं हमें केवल अपने विचारों को और ध्येय को बदल कर संविधान को क्रियान्वित करना चाहिये और हम देखेंगे कि हमारी प्रस्तावना में जो कुछ भी लिखा है वह पूरा हो जायेगा, किन्तु यदि हम किसी विरोधी भावना को लेकर

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

चलेंगे तो कठिन हो जायेगा। श्रीमान, जैसाकि मैंने कहा है, मसौदा समिति ने संसार के सभी संविधानों को देखा है और हमें ऐसा संविधान दिया है जिससे हम बहुत सुविधा के साथ काम चला सकते हैं जैसी कि हमें आदत है।

एक और बात जिस पर चर्चा और आलोचना हो रही है यह है कि केन्द्र को आवश्यकता से अधिक शक्ति दे दी है, और प्रान्तीय स्वायत्तता की सब बात भुला दी गई है और प्रान्तों से शक्ति छीन ली गई है। यह बहुत ग़लत है। देश की वर्तमान स्थिति में और विश्व की शक्तियां जैसे काम कर रही हैं उन परिस्थितियों में यह अत्यावश्यक था कि इतनी शक्ति केन्द्र अपने पास रखता। श्रीमान, संविधान के निर्माण में हमारे वे नेता थे जिन्होंने अपने आपको मिटा डाला है और जिन्होंने कभी नहीं सोचा कि इस जीवन में वे अपने स्वतन्त्रता के स्वप्न को पूरा कर सकेंगे और यह देख सकेंगे कि भारत के लोगों ने उस वस्तु को प्राप्त कर लिया है जो उनके सुख और भावी समृद्धि के लिये आवश्यक थी। श्रीमान, अब ऐसे लोग ही इस समय कामकाज संभाले हुए हैं। यदि उन्होंने केन्द्र को अधिक शक्ति देने का निर्णय किया है तो अपने शक्ति के प्रेम के कारण नहीं। उन्होंने केवल एक ही चीज का ध्यान रखा है और वह है देश की भलाई और लोगों का सुख। श्रीमान, शासन के रूप से कुछ अन्तर नहीं होता। अन्तर इस बात से पड़ता है कि देश का प्रशासन कैसे हो। जब काम संभालने वाले व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने, जैसा कि मैंने पहले कहा है, अपने आपको मिटा दिया है, जिन्होंने कभी नहीं सोचा था कि अपने इस जीवन में उन्हें कोई शक्ति मिल जायेगी या वे अपने देश को इस समृद्धिशाली अवस्था में देख सकेंगे, अत: हमें कोई ऐसी आशंका नहीं होनी चाहिए। कि केन्द्र कोई ऐसी बात करेगा जो हमारे देश के हितों के विरुद्ध होगी। इतिहास से पता लगता है कि राजतंत्र की शासन व्यवस्था के अंतर्गत भी हमारे यहां ऐसे ही शासक थे जो जनता की भावनाओं और स्वतन्त्रताओं का आदर करते थे। अतएव कोई कारण नहीं है कि हमें ऐसी आशंका हो कि प्रान्तों में या केन्द्र में कभी भी हमारी स्वतन्त्रताओं को कम किया जायेगा। यदि किसी समय हमारी स्वतन्त्रता पर कोई भी निर्बंधन लगाया जाता है तो मुझे विश्वास है कि वह जनता की भलाई के लिये ही होगा, वर्तमान सत्ता के संतोषमात्र के लिये नहीं।

श्रीमान, मैं उस सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता कि सब चीज़ों का केन्द्रीकरण हो जाना चाहिये ओर देश का शासन केन्द्र से ही होना चाहिये। परन्तु मैं इस बात से सहमत हूं कि केन्द्र को शक्तियां दे देनी चाहिये जिससे कि आपात में उनका प्रयोग जनता की भलाई के लिये किया जा सके। श्रीमान, केन्द्र के पास ऐसी ही शक्ति होनी चाहिये जो आवश्यक हो और जिसका प्रयोग उसके अंगभूत शासक अंग न कर सकें, जिससे कि समूचे भारत की एकता तथा अखंडता बनी रहे। अन्य सब शक्तियों को, यथासम्भव, विकेन्द्रित कर देना चाहिये और ग्राम के एकक को या ग्रामों के समूहों को दे देना चाहिये, प्रान्तों का तो कहना ही क्या। उसी प्रयोजन से मैंने प्रस्तावना में एक संशोधन की सूचना भेजी थी "कि 'Republic' शब्द के पश्चात् 'to be worked on the basis of autonomous village units or groups of villages organised on the principle of self-sufficiency as

far as practicable' ये शब्द जोड़ दिये जायें।" दूसरी बात मैंने प्रस्तावना के विषय में यह कही थी कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा संयम, सादगी और निस्वार्थ कार्य का जो उच्चादर्श रखा गया था उसे प्रस्तावना में संशोधन द्वारा रख दिया जाये। संशोधन का उद्देश्य यह था कि जब हम लोकतंत्रात्मक शासन बनाने जा रहे हैं तो हमें यथासम्भव सच्चा लोकतन्त्र बनाने के लिये लघु से लघु अंग को यथा सम्भव अधिकाधिक शक्ति दे देनी चाहिये जिससे कि उस एकक के व्यक्तियों को सुलभ और शीघ्र न्याय मिल सके जो ग्राम गणराज्य के अन्तर्गत सम्भव है। एक और संशोधन द्वारा मैं संविधान में ऐसे मार्गदर्शक सिद्धान्त रखना चाहता था जो हमारे लोगों में होने चाहियें, जिनके बिना प्रस्तावना में दिये हुए अन्य ध्येय प्राप्त नहीं हो सकते। किन्तु इसे स्वीकार नहीं किया गया।

श्रीमान, ग्राम गणराज्य के विषय में मैं सदन का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। पता नहीं माननीय डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के मसौदे के दूसरे पठन के आरम्भ होने पर जो बातें कही थीं वे उनकी अपनी राय थी या मसौदा समिति की थी जब उन्होंने यह कहा था:

> "इस मसविदे के विरुद्ध दूसरी आलोचना यह की गई है कि इसमें कहीं भी भारत की प्राचीन राजनीति को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह कहा जाता है कि इस नवीन विधान का निर्माण प्राचीन हिन्दू राज्य परम्परा के आधार पर होना चाहिये था और इसमें पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों का समावेश न कर, ग्राम और जिला पंचायतों की भित्ति पर इसे खड़ा करना चाहिये था। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी विचार धारा बहुत आगे—अति की ओर—चली गई है। वे कोई भी केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन नहीं चाहते थे। वे चाहते हैं कि भारत में केवल ग्राम सरकारें हों। बुद्धि सम्पन्न भारतीयों का ग्राम समाज के प्रति जो प्रेम है वह यदि कारुणिक नहीं तो असीम तो अवश्य ही है।"

फिर डॉ. अम्बेडकर ने एक उद्धरण दिया है:

> "इस मनोवृत्ति का बहुत कुछ कारण तो यह है कि श्री मेटकाफ ने जो ग्राम समाज का स्तुतिगान किया है इससे वे प्रभावित हैं। मेटकाफ ने ग्रामों का वर्णन करते हुए कहा है कि वे छोटे-छोटे प्रजातन्त्र थे जिनमें अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं और जो वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित करने से प्राय: मुक्त थे। मेटकाफ की राय यह है कि सभी क्रांतियों एवं परिवर्तनों में जिनमें कि यहां की जनता को कष्ट भोगना पड़ा, भारतीय जन समुदाय की रक्षा में और कोई भी बात इतनी सहायक नहीं हुई है जितनी कि इन ग्राम पंचायतों का अस्तित्व जो छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों के रूप में वर्तमान थे, और उनके मतानुसार यह ग्राम पंचायतें भारतीयों के सुख में एवं उनके स्वातंत्र्य उपभोग में बहुत हद तक सहायक हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जहां और सभी कुछ नष्ट हो गये, हमारा ग्राम समुदाय आज भी वर्तमान है। किन्तु जो लोग

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

इन गांवों पर गर्व करते हैं, वे इस बात का विचार ही नहीं करते कि आखिर देश के भाग्य निर्माण में तथा उसके कार्यकलाप में इन ग्रामों ने कितना कम हाथ बटाया है और क्यों। देश के भाग्य निर्माण में इन्हें क्या भाग लिया है इसका अच्छा वर्णन भी मेटकाफ़ के स्वयं किया है जो कहता है:"

फिर आगे चल कर डॉ. अम्बेडकर कहते हैं:

"हमारी ग्राम पंचायतों ने देश के इतिहास में यही ज्वलंत काम किया है इसे जानते हुए हमें उसके लिए आखिर क्या गर्व हो सकता है। यह बात सच हो सकती है कि भयंकर उथल पुथल होते हुये भी यह जीवित रह गई। किन्तु केवल जीवित रहने का क्या मूल्य है? प्रश्न तो यह है कि ये किस स्तर पर जीवित रहीं? निश्चय ही बड़े निम्न और स्वार्थपूर्ण स्तर पर यह जीवित रहीं। मेरा मत है कि ये ग्राम पंचायतें ही भारत की बर्बादी का कारण रही हैं। इस लिये मुझे आश्चर्य होता है कि जो लोग प्रान्तीयता की साम्प्रदायिकता की निन्दा करते हैं, वे ही ग्रामों की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं। हमारे ग्राम हैं क्या? वे कूपमण्डूकता के अड्डे हैं, अज्ञान, संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता की काल कोठरियां हैं। मुझे तो प्रसन्नता है कि संविधान के मसविदे में ग्राम को अलग फेंक दिया गया है और व्यक्ति राष्ट्र का अंग माना गया है।"

श्रीमान, मैं केवल यही कहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने ग्रामीणों के प्रति जो कुछ कहा है उससे अधिक अनुदार और अन्यायपूर्ण बात और क्या हो सकती है। डॉक्टर अम्बेडकर स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे जीवित रहे हैं और उन्होंने भारत की स्वतंन्त्रता को बनाये रखा है। उन्होंने कहा है कि केवल जीवित रहना पर्याप्त नहीं है, केवल जीवित रहने का कोई मूल्य नहीं है। आज क्या स्थिति है? हमें अपने खाद्य पदार्थों के लिये भी भीख मांगनी पड़ती है। हमें यह स्वतन्त्रता भी प्राप्त नहीं होती, यदि हम कम से कम खाद्यान्न के विषय में ग्राम अर्थव्यवस्था को बनाये न रखते, और अर्थव्यवस्था में ग्राम एककों को रखने से ही हम अपनी स्वतन्त्रता को उसके असली अर्थ में बनाये रख सकेंगे और जीवित रह सकेंगे। ग्रामों को बनाये रखने क कारण ही हम जीवित रह सके हैं और सुख से रह सके हैं। यह बात डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार की है। आज हम जो कुछ चाहते हैं वह चीज़ पैदा नहीं कर सकते। ग्रामों में जो कुछ भी सम्पत्ति थी वह उनसे छीन ली गई है या जो भी सम्पत्ति भूमि या ढोरों के रूप में थी वह नष्ट भ्रष्ट हो गई है। जो भूमि थी वह लगभग बंजर ही बन गई है। क्यों? जो भी खाद था, हड्डियों आदि के रूप में जो खाद था, जिससे भूमि का उपजाऊपन बना रहता था, वह अब निर्यात हो जाता है। सब हड्डियां और मृतक जानवर आदि खाद जो कुछ खेत में पड़ा रह जाता था वह शनैः शनैः सड़ता था और भूमि के उपजाऊपन को बनाये रखता था। ढोरों के विषय में, जब लार्ड लिनलिथगो आया था तो उसने सांड की नस्ल को बढ़ाने का आन्दोलन आरम्भ किया था। वह एक वर्ष के लगभग चला, किन्तु युद्धकाल में यह हुआ कि देश के सर्वोत्तम ढोर सेना के लिये, ब्रिटिश साम्राज्य के रक्षण के लिये, काट डाले गये। जब डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि ग्रामीणों ने और ग्राम गणराज्यों ने देश के रक्षण में

भाग नहीं लिया, तब मैं उनसे पूछूंगा कि क्या उन्होंने असहयोग के इतिहास को पढ़ा है। यदि उन्होंने पढ़ा है, तो उन्हें पता लगेगा कि ग्रामीणों ने हमारे उन योग्य नेताओं के कहने पर कार्य किया जिन्होंने अपने आपको मिटा दिया था और जो यह सोच कर ग्रामों में गये थे कि ग्राम ही देश को स्वतन्त्रता दिला सकते हैं। ग्रामीणों ने स्वतन्त्रता के संघर्ष में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। यह कहना अत्यन्त अनुदारता है कि ग्रामीणों और ग्राम गणराज्यों ने कुछ नहीं किया है और उन्होंने देश को बरबाद कर दिया है। वास्तव में देश की बरबादी ग्राम गणराज्यों के कारण नहीं हुई है, वरन् बात उल्टी है। ब्रिटिश शासन में केन्द्र ने गांवों को बरबाद कर दिया, जिनमें भारत के 90 प्रतिशत लोग रहते हैं और समूचे भारत को अपनी आवश्यकताओं के लिये भिखारी के समान बना दिया। हां, उस समय केन्द्र में हम नहीं थे। दूसरे लोग थे। उन्हें कोई और प्रयोजन सिद्ध करना था। अब जनता के लोग कामकाज संभाले हुए हैं और स्थिति भिन्न होनी चाहिये। श्रीमान मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि हम देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारना चाहते हैं, यदि हम जनता को सुखी बनाना चाहते हैं, तो हमें केवल आदर्श के रूप में ही नहीं, वरन् व्यवहारिक मार्ग के रूप में ग्रामों का संगठन प्राचीन आधार पर करना होगा। ग्राम पंचायतों का संगठन उसी आधार पर होना चाहिये जिस पर वे अतीत में चलती थीं। उस प्रकार देश की अर्थ-व्यवस्था को विकेन्द्रित करना होगा। वर्तमान संसार में हमारे लिये वस्तुओं का बड़े पैमाने पर निर्माण बन्द कर देना सम्भव नहीं है, किन्तु फिर भी हमारे देश की अर्थ व्यवस्था को यथासम्भव शीघ्र ही विकेन्द्रित कर देना चाहिये। हम जितनी जल्दी ऐसा करें, हम जितनी जल्दी इस पर ध्यान दें, उतना ही हमारे लिये अच्छा होगा। श्रीमान, यद्यपि संविधान के मुख्य भाग में ऐसा नहीं लिखा है और संविधान ग्राम गणराज्यों को केन्द्र का अंग मान कर नहीं बनाया गया है; फिर भी निदेशक सिद्धान्तों में लिखा है ग्रामों पंचायतों का यथासम्भव अधिकतम शक्तियों के साथ संगठन करना चाहिये, और मैं अपने नेताओं से प्रार्थना करना चाहता हूं कि इस चीज को यथासम्भव शीघ्र क्रियान्वित करना चाहिये मानो कि यह संविधान में ही समाविष्ट हो। केवल तभी, श्रीमान, हम अपनी वास्तविक स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकेंगे। इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): श्रीमान, माननीय डॉ. अम्बेडकर ने संविधान को स्वीकार करने का जो प्रस्ताव रखा है उसका समर्थन करते हुए मैं सदन का थोड़ा सा समय लेना चाहता हूं। इस संविधान का आधार वे सिफारिशें हैं जो इस सदन द्वारा निर्मित विभिन्न समितियों ने की थीं और वह मसौदा है जो पहले मसौदा समिति ने पेश किया था और बाद में उसे दोहराया था। अपनी वक्तृता में मैं सदन का ध्यान संविधान की मुख्य बातों की ओर दिलाऊंगा और ऐसा करते समय मैं उन आलोचनाओं का ख्याल रखूंगा जो कुछ सदस्यों ने संविधान पर की हैं। मेरा निवेदन है कि यह संविधान अपने अन्तिम स्वरूप में, उस लक्ष्य सम्बन्धी संकल्प की भावना का सच्चा प्रतिबिम्ब है जो इस सभा ने अपना कार्यारम्भ करने पर पारित किया था और संविधान की प्रस्तावना की भावना का भी प्रतीक है जो मुख्यत: लक्ष्यसम्बन्धी संकल्प पर ही मुख्यत: आधारित था।

सर्वप्रथम, भारतीय लोगों की अज्ञानता और निरक्षरता के बावजूद, सभा ने वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है, जिसका अर्थ यह है कि

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

जनसाधारण में और लोकतंत्रात्मक शासन की सफलता में उसे पूर्ण विश्वास है, और उसे पूरा भरोसा है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर लोकतन्त्रात्मक शासन की स्थापना से जनसाधारण को बुद्धि प्राप्त होगी, और उसकी भलाई, जीवनस्तर और आराम में वृद्धि होगी। वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को यूं ही स्वीकार नहीं कर लिया गया था, वरन् उसके आशय को पूरी तरह समझ कर ही ऐसा किया गया था। यदि लोकतन्त्र का आधार विस्तृत होना है और शासन का अन्तिम आधार समूची जनता की इच्छा होनी है, तो ऐसे देश में जहां अधिक जनता निरक्षर है और सम्पत्ति वाले व्यक्ति बहुत कम हैं, मताधिकार के लिये किसी सम्पत्ति सम्बन्धी या शिक्षा सम्बन्धी योग्यताओं को रखने से लोकतन्त्र के सिद्धान्तों का ही निराकरण हो जाता है। यदि ऐसी योग्यताएं रखी जाती तो उससे बहुत से श्रमिक वर्ग और बहुत सी स्त्रियां मताधिकार से वंचित हो जातीं। आखिर यह तो माना नहीं जा सकता कि थोड़ी सी प्रारम्भिक शिक्षा वाला तथा पढ़ना लिखना गिनना मात्र जानने वाला व्यक्ति किसी श्रमिक कृषक या भूमिधर से अधिक अच्छी प्रकार मताधिकार का प्रयोग कर सकेगा, वे भी यह जान सकते हैं कि उनका हित किस में है और वे अपने प्रतिनिधियों को चुन सकते हैं। सम्भवत: बड़े पैमाने पर मताधिकार का प्रभाव यह भी हो सकता है कि भ्रष्टाचार मिट जाये, जो लोकतन्त्रात्मक निर्वाचन का परिणाम हो सकता है। वयस्क मताधिकार के सिद्धान्तों को स्वीकार करने पर यह सभा बधाई की पात्र है और यह कहा जा सकता है कि कि विश्व के इतिहास में पहले कभी ऐसा प्रयोग इतने साहस के साथ नहीं किया गया है। वयस्क मताधिकार का विकल्प केवल किसी न किसी प्रकार का अप्रत्यक्ष निर्वाचन होता जो ग्राम समुदाय या स्थानीय निकायों के आधार पर, उन्हें निर्वाचक-मंडल बना कर किया जाता, और वे निर्वाचक-मंडल वयस्क मताधिकार के अनुसार चुने जाते। यह बात सम्भव नहीं प्रतीत हुई।

इस बात को पूर्णतया समझते हुए कि साम्प्रदायिक निर्वाचकवर्ग और लोकतन्त्र दोनों साथ साथ नहीं रह सकते, और कि ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने लोकतन्त्र का स्वस्थ तथा मजबूत आधार पर स्वतन्त्र विकास होने से रोकने के लिये ही साम्प्रदायिक निर्वाचक-वर्ग का उपाय अपनाया था, इस सभा ने हमारे प्रधान मन्त्री और सरदार पटेल के योग्य नेतृत्व में, साम्प्रदायिक निर्वाचनों को समाप्त कर दिया है, और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों के लिये अस्थायी काल के लिये संयुक्त निर्वाचक-वर्ग के आधार पर विशेष व्यवस्था कर दी है। जैसाकि उस समय सरदार जी ने अपनी प्रसिद्ध वक्तृता में ठीक ही कहा था, हमें संसार को यह दिखाना है, उन लोगों को जो साम्प्रदायिक दावों के आधार पर पले हैं यह दिखाना है कि हमें लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्तों में और जाति, विचारधारा या श्रेणी के विभेद के बिना लौकिक राज्य की स्थापना में सच्चा विश्वास है।

साम्प्रदायिक निर्वाचक-वर्गों को हटाने के विषय में जो सिद्धान्त संविधान के अनुच्छेदों में निहित हैं, उनसे ही अत्यन्त सम्बद्ध उपबन्ध मूल अधिकारों के अध्याय में है कि राज्य के अधीन किसी पद पर नियुक्ति सम्बन्धी मामलों में प्रत्येक नागरिक को अवसर-समता होगी, कि राज्य के अधीन किसी नियुक्ति या पद के विषय में किसी नागरिक के साथ, धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग, वंश, जन्मस्थान आदि के

आधार पर विभेद नहीं किया जायेगा। मैं उन विशेष उपबन्धों को तो गिन ही नहीं रहा हूं जो नागरिकों के पिछड़े हुए वर्गों के पक्ष में रखे गये हैं। इस सम्बन्ध में यह दिलचस्पी की बात है कि संयुक्त राज्य अमरीका तक के संविधान में ऐसी भाषा में ऐसी कोई घोषणा नहीं है। संयुक्त राज्य के संविधान में 14वें संशोधन का उद्देश्य हबशियों की निर्योग्यता को हटाना था, पर, अनुभव से पता लगा है कि उससे प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है और पन्द्रहवें संशोधन में केवल मतदान का ही विषय है। अतएव हम यह भी दावा कर सकते हैं कि हमारा संविधान अमरीका के उन्नत संविधान से भी अधिक लोकतन्त्रात्मक है, लोकतन्त्र के सिद्धान्तों में उसकी जड़ें अधिक गहरी जमी हुई हैं। अस्पृश्यता का अन्त एक और बड़ा कार्य है जो इस सभा ने किया है।

बहुत सी रियासतों का, जो इस देश के कोने में द्वीपों के समान बिखरी हुई थीं, अंत, पड़ोस के प्रान्तों में उनका विलय, सरदार पटेल के योग्य नेतृत्व में हुआ है। इसके फलस्वरूप राज्यों की संख्या बहुत कम रह गई है, और पृथक् पृथक् राज्यों के रूप में या राज्य संघों के रूप में उन्हें भारतीय संघ के वृत्त में शामिल कर दिया गया है। उनके संविधानों को भाग 1 के राज्यों के संविधानों के बराबर बना दिया है, और वे उन्हीं शर्तों पर भारत-संघ के एकक बन गये हैं जिन पर भाग 1 के राज्य हैं, और अब हम यह कह सकते हैं कि संघ के सब एकक उसके सम्बन्ध में एक ही स्थिति में हैं, केवल कुछ विशिष्ट अन्तर्कालीन उपबन्ध अपवाद रूप में है। संविधान उन राज्यों को, जो संघ में मिल गये हैं, उससे पृथक् होने की अनुमति नहीं देता। संघ के साथ उन का सम्बन्ध अटूट है और वे भारतीय संघ के अभिन्न अंग बन गये हैं। अब पीछे हटने का प्रश्न नहीं है। इस कार्य सफलता की महत्ता इसलिये बहुत अधिक है कि ऐसे बहुत से राज्यों के अस्तित्व का बहाना बना कर ही अंग्रेज़ साम्राज्यवादी सदा भारत को स्वतंत्रता देने से इनकार करते रहते थे। 1935 के अधिनियम से यह अन्तर दूर होने की बजाय स्थायी बन गया।

अमरीका से राष्ट्रपति पद्धति और इंगलिस्तान तथा अधिराज्यों की केबिनेट शासनप्रणाली के गुणों और अवगुणों को तोलने के पश्चात्, और यह भी विचार करने के बाद कि कुछ वर्षों से भारतीय प्रान्तों में उत्तरदायी शसन कैसे काम करता रहा है और भाग 2 (अब भाग 1 ख) के राज्यों में शुद्धतः राष्ट्रपति पद्धति की शासन-व्यवस्था रखना कितना कठिन है, इस सभा ने जानबूझ कर राज्यों में तथा केन्द्र में, दोनों स्थानों पर, उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। साथ ही सभा को इस बात का पूरा पूरा ध्यान था कि भाग 1ख के बहुत से राज्य लोकतन्त्रात्मक या उत्तरदायी शासन से अपरिचित थे और प्रारम्भिक स्थिति में उसकी सफलता के लिये संघ सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है जब कि लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में असफलता या गतिरोध हो जाये।

मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने पार्थक्य के सिद्धान्त पर आधारित सांविधानिक व्यवस्था के गुणों का गान करते हुए, पूरी तरह यह नहीं समझा कि भारत जैसी परिस्थितियों में है उनमें इस व्यवस्था से अश्वमेव संघर्ष और गतिरोध हो सकता है। संविधान में आपात के उपबन्धों का उद्देश्य यह नहीं है कि विविध एककों में लोकतंत्रात्मक संस्थाओं या उत्तरदायी शासन के स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में बाधा डाली जाये, किन्तु केवल यही उद्देश्य है कि जब संविधान पर अमल करने में सचमुच कठिनाइयां पैदा हो जायें तब शासन को सफलता से चलाया

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

जा सके। 1935 के संविधान में ब्रिटिश संसद की सत्ता के अधीन राज्यपाल या गवर्नर जनरल जिस शक्ति का प्रयोग करते थे उसमें और इस नये संविधान के अधीन केन्द्रीय सरकार को जो शक्ति प्राप्त होगी उसमें कोई समानता नहीं है। भविष्य में भारत की केन्द्रीय सरकार भारतीय संसद के प्रति उत्तरदायी होगी, जिसमें कि विभिन्न एककों के लोग वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने हुए हैं और वे अपने किसी कार्य के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी हैं। एक प्रकार से, आपात उपबन्ध केवल यही है कि जब एककों में प्रशासन टूट जाये तो दिल्ली में संसद उस उत्तरदायित्व को संभाल ले।

नागरिकता के विषय में, संविधान ने जानबूझ कर समूचे भारत के लिये एक नागरिकता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है और द्वैध नागरिकता को नहीं रखा है जो कई संविधानों में प्रायः पाई जाती है। इस विषय में भारतीय संविधान कुछ संघीय संविधानों से आगे बढ़ा हुआ है। आशा की जाती है कि इससे भारत-संघ का एकीकरण हो जायेगा। संविधान का उद्देश्य यह नहीं है कि नागरिकता के विषय में कोई विस्तृत विधि बनाई जाये, वरन् ऐसी विधि बनाने का कार्य भारत की भावी संसद् पर छोड़ दिया गया है।

संविधान में न्यायपालिका को समुचित स्थान दिया गया है जो एक लिखित और विशेषतः एक संघीय संविधान में होना चाहिये। संघवादी की भाषा में, अमरीका में न्यायालय की पूर्ण स्वतन्त्रता संघीय संविधान के ठीक प्रकार से कार्य करने के लिये विशेषतः आवश्यक है। राज्य के विविध अंगों को सीमा में रखने का तरीका केवल न्यायालयों का माध्यम ही है और राष्ट्रपति विलसन के अनुसार न्यायालय संविधान के संतुलन-चक्र हैं। भारतीय संविधान के अंतर्गत भारत के उच्चतम न्यायालय को बहुत शक्तियां हैं जितनी किसी अन्य संघ के न्यायालय में नहीं हैं, संयुक्त राज्य अमरीका में भी नहीं हैं, क्यों कि वहां का उच्चतम न्यायालय अपील का सामान्य न्यायालय नहीं है। उच्चतम न्यायालय सब व्यवहार वादों में सब उच्च न्यायालयों से अपील का न्यायालय है जिनमें भाग 1 ख के राज्यों के न्यायालय भी शामिल हैं। संविधान के निर्वचन सम्बन्धी सब मामलों में वही अन्तिम निर्णायक है। उसे सब न्यायाधिकरणों के निर्णयों को दोहराने का क्षेत्राधिकार हैं चाहे वे न्यायालय शब्द की परिधि में भी न आते हों। कनाडाई उच्चतम न्यायालय अधिनियम के अधीन वहां के उच्चतम न्यायालय को जो अधिकार प्राप्त है वैसा ही परामर्श-सम्बन्धी क्षेत्राधिकार भी हमारे उच्चतम न्यायालय को प्राप्त है, जो कि संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय को भी प्राप्त नहीं है। उसे भारत के सब भागों में परमाधिकार के लेख निकालने का मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। वह राज्यों के बीच के प्रश्नों का फैसला करने वाला न्यायालय भी है। आपराधिक मामलों में भी, उच्चतम न्यायालय विशेष अनुमति दे सकता है और कुछ विशिष्ट प्रकार के मामलों में दण्ड विषयक अपीलीय क्षेत्राधिकार का भी प्रयोग कर सकता है। यदि आलोचना हो तो यह नहीं हो सकती कि उच्चतम न्यायालय की शक्तियां काफी विस्तृत नहीं है, वरन् यह आलोचना हो सकती है कि वे अत्यधिक विस्तृत हैं।

उच्च न्यायालय विषयक उपबन्ध मुख्यतः वर्तमान उपबन्धों के नमूने पर ही बने हैं, केवल यही अपवाद है कि क्षेत्राधिकार पर कुछ रुकावटें हटा दी गई

हैं। आगे से वे अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सब क्षेत्रों में परमाधिकार लेख निकाल सकते हैं। उच्च न्यायालयों को राजस्व सम्बन्धी मामलों में क्षेत्राधिकार नहीं था, उस अंसगति को हटा दिया गया है, और अधीनस्थ न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों पर अधीक्षण की शक्तियां उन्हें फिर दे दी गई हैं। इस बात का ध्यान रखा गया है सर्वोच्च न्यायालय में नियुक्ति के विषय में, राष्ट्रपति को उन लोगों की मंत्रणा प्राप्त होगी जो उसे इस विषय पर मंत्रणा देने के लिये अत्यन्त सक्षम हैं। उच्च न्यायालय को प्रांतीय राजनीति के क्षेत्राधिकार से बाहर रखने के लिये, महत्वपूर्ण मामलों में उच्च न्यायालयों को राष्ट्रीय सरकार के क्षेत्राधिकार में रख दिया गया है। न्यायिक स्वाधीनता को बनाये रखने की आवश्यकता के विषय में दो मत नहीं हो सकते जिससे कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता का संरक्षण हो सके तथा संविधान को समुचित रूप से चलाया सके, परन्तु एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को ध्यान में रखना भी अपेक्षित है। स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को एक ऐसी रूढ़ि नहीं मान लेना चाहिये जिससे कि न्यायपालिका विधान-मंडल से भी ऊंची वस्तु या कार्यपालिका से ऊंची वस्तु बन सके। न्यायपालिका संविधान का निर्वचन करने के लिये है या सम्बद्ध पक्षकों के बीच के अधिकारों का निर्णय करने के लिये है। जैसा कि अभी हाल में ही उच्चतम न्यायालय के एक मुख्य विनिश्चय में बताया गया है, कांग्रेस और कार्यपालिका के समान ही न्यायपालिका भी अपने कुशल और ठीक कार्य करने के लिये दोनों के सहयोग पर निर्भर है।

मूल अधिकारों के विषय में यह आलोचना हुई है कि अपवाद उन अधिकारों के मूल पर ही कुठाराघात करते हैं। यह आलोचना सर्वथा निराधार है। उन अनुच्छेदों में जो शर्तें और अपवाद रखे गये हैं, उनसे मूल अधिकारों पर सर्वमान्य अपवादों और सीमाओं को केवल कानून का रूप मिल गया है। संयुक्त राज्य के संविधान में भी जिसमें इन अधिकारों का व्यापक उपबन्ध है, उच्चतम न्यायालय ने ये ही निर्बंधन लगाये हैं। यह सबको ज्ञात है कि संयुक्त राज्य के उच्च्तम न्यायालय ने वाक् स्वातन्त्र्य और प्रेस-स्वातन्त्र्य का यह अर्थ निकाला है कि उससे ऐसे कानूनों का वर्जन नहीं होता जो वचन या लेख द्वारा भय उपजाने का निषेध करते हों या अश्लील बातों के प्रकाशन को बन्द करते हों, राज्य की पुलिस-शक्ति के प्रयोगार्थ हों, यदि राज्य को ऐसा करने के लिये काफी सामाजिक हित दिखाई दे। इसी प्रकार धार्मिक स्वतन्त्रता का यह अर्थ निकाला गया है कि उससे नागरिकों की असामाजिक कार्यों में रक्षा नहीं हो सकती। संस्था बनाने और सार्वजनिक सभा करने के अधिकार से इस बात में बाधा नहीं पड़ती है कि संयुक्त राज्य या उसका कोई राज्य सामान्य कल्याण के हितार्थ लोगों के समवेत होने पर सामाजिक नियंत्रण लगा सकते हैं। यह अनुचछेद जिस अन्तिम रूप में आ गया है, उसमें इस सभा ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता और सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता के बीच एक सीमा रखने का प्रयत्न किया है। संविधान में इस सिद्धान्त को नहीं छोड़ा गया है कि किसी व्यक्ति को प्रतिकर के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा, किन्तु संसद को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह सम्बद्ध सम्पत्ति के प्रकार और इतिहास आदि पर समुचित विचार करके प्रतिकर के सम्बन्ध में सिद्धान्त निश्चित कर सकती है। बहुत से कृषकों पर प्रभाव डालने वाले महत्वपूर्ण कृषि-सम्बन्धी सुधारों की आवश्यकता पर पूरी तरह ध्यान रखते हुए, इस सभा ने, उचित विचार के पश्चात्, कुछ विशेष उपबन्ध रखे हैं जिससे

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

कि जो कदम उठाये जायें उनकी वैधता पर न्यायालयों में आपत्ति न की जा सके, किन्तु साथ ही सम्बद्ध दलों के हितों का रक्षण करने के लिये आवश्यक रक्षा-कवच रखे गये हैं।

मूल अधिकारों के अध्याय में एक और मामला है जिस पर कुछ अधिक ध्यान देना अपेक्षित है। अनुच्छेद 22 के खंड (4) से कार्यपालिका को अधिकार मिल जाता है कि वह किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक के लिये निरुद्ध रख सकती है अतः उस खंड की आलोचना की गई है। पर ऐसी कोई बात नहीं है। समूचे अनुच्छेद 22 का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 21 के उपबन्धों के दुरुपयोग को रोका जाये जिसमें व्यापक शब्दों में कहा गया है कि "किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा।" यदि अनुच्छेद 21 अकेला ही होता तो उससे अनिश्चित काल के लिये निरोध किया जा सकता है यदि वह केवल विधि द्वारा प्रस्थापित प्रक्रिया के अनुरूप हो। अनुच्छेद 22 को इस लिये रखा गया है जिससे कि अनिश्चित काल तक निरोध न हो सके। संविधान सभा को पता था कि नये राज्य पर बहुत सी जोखिम हैं, अतः वह निरोध को बिल्कुल हटा नहीं सकी।

मैं समझता हूं कि राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त भी संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता हैं। उन अनुच्छेदों में कई विस्तृत प्रकार के विषयों का उल्लेख है और उन विषयों को न्याय्य बनाना स्पष्टतः कठिन है, इसलिये उन्हें राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों की श्रेणी में रखा गया है। सामाजिक नीति के सिद्धान्तों का आधार संविधान की प्रस्तावना और लक्ष्यमूलक संकल्प है। अनुच्छेद 37 में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि उनमें जो सिद्धान्त है वे देश के शासन में आधारभूत हैं और राज्य का कर्तव्य है कि उन सिद्धान्तों का विधि-निर्माण में प्रयोग करे। कोई मंत्रिमंडल, जो जनता के प्रति उत्तरदायी हो, संविधान के भाग 4 के उपबन्धों की यूंही उपेक्षा नहीं कर सकता।

विधायी शक्ति के वितरण के विषय में इस सभा ने इस समय की राजनैतिक और आर्थिक स्थितियों पर विचार किया है, और संघानीय शासन के संविधान में वितरण के सिद्धान्तों सम्बन्धी किसी निश्चित नियमों का अनुसरण नहीं किया है। वितरण के विषय में केन्द्र को अवशिष्ट शक्ति दे दी गई हैं, और राष्ट्रीय तथा अखिल भारतीय महत्व के विशेष विषयों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है। बहुत से विषयों को समवर्ती सूची में रख दिया गया है, जिससे कि जहां हस्तक्षेप की आवश्यकता हो वहां केन्द्र हस्तक्षेप कर सके और राज्य-विधान का निराकरण कर सके, यद्यपि साधारणतः, जब मार्ग साफ़ हो, तब राज्य-विधान-मण्डलों को विधान-निर्माण का अधिकार होगा। बहुत से समवर्ती विषयों के रखने का उद्देश्य केन्द्र और एककों में समन्वय बढ़ाना है, जिससे कि संघर्ष होने पर न्यायालयों की शरण न लेनी पड़े, जो कि विषयों को श्रेणियों में बांटने पर आवश्यक हो जाता। अप्रत्याशित राष्ट्रीय आपात और आर्थिक स्थिति का सामना करने के लिये, विशेष उपबन्ध रख दिये गये हैं कि केन्द्र हस्तक्षेप भी कर सकता है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि आधुनिक संसार में संघवाद का सारा आशय ही बदलता जा रहा है। सामाजिक और आर्थिक बलों के प्रभाव से, संचरण के द्रुत-साधन निकल जाने से, और व्यापार तथा वाणिज्य के विषय में विविध एककों के आवश्यक सन्निकट सम्बन्धों के कारण, आधुनिक संसार में संघवाद का अर्थ

ही बदल रहा है। कनाडा में रोवेल स्कोर आयोग ने, और आस्ट्रेलिया के संविधान की सफलता पर विवरण देने के लिये जो राजकीय आयोग बना था उसने, बहुत से उपाय सुझाये हैं जिनसे संघीय शासन के काम में आने वाली कठिनाइयों को दूर किया जा सके। इस समस्या का समाधान प्रत्येक देश को अपने यहां की विशेष स्थितियों का ध्यान रख कर करना होगा, क्योंकि प्रत्येक देश की विशेष परिस्थितियां होती हैं, समस्याओं का समाधान किसी पूर्वनिश्चित सिद्धान्त या परिकल्पना से नहीं हो सकता।

इस प्रकार के मामले पर विचार करते हुए, हम इस आधार पर नहीं चल सकते कि संघवाद अवश्यमेव किसी निश्चित प्रकार का या परिभाषा के अनुसार होना चाहिये। कनाडा के संविधान के विषय में भी, लार्ड हालडेन और लार्ड वाटसन जैसे दो विद्वानों में गहरा मतभेद था, पहले महाशय कहते थे कि संविधान संघानीय नहीं है और दूसरे महाशय स्पष्टतः इससे विरोधी विचारधारा के थे। सब परिकल्पनाओं को छोड़कर मुख्य प्रश्न यह है कि "क्या राष्ट्रीय और राज्य सरकारें एक दूसरे से 'प्रधान' और 'प्रतिनिधि' के रूप में सम्बद्ध है?" जब तक कि वे अपने निश्चित क्षेत्राधिकार में अपनी पूर्ण सत्ता का प्रयोग कर सकते हैं, तब तक संविधान को संघानीय प्रकार का बताने से इनकार नहीं किया जा सकता।

मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं कि केन्द्र को संघ-एककों से शक्ति लेकर बहुत शक्तिशाली बना दिया है। विधायी क्षेत्र में एककों को दिये गये विषयों की सूची में अधिक परिवर्तन नहीं किया गया है। एककों को प्रांतीय क्षेत्र में असीमित कार्यपालिका शक्ति प्राप्त है। समवर्ती विषयों में भी कार्यपालिका शक्ति एककों में ही निहित है, यद्यपि राज्य की आवश्यकताओं पर केन्द्र को हस्तक्षेप करने की शक्ति है। संघ में निहित आपात शक्तियां ऐसे प्रकार की हैं कि वे कभी सामान्य या साधारण स्थिति के लिये नहीं हो सकतीं।

करारोपण शक्ति के सम्बन्ध में, संविधान के अधीन जो आयोग नियुक्त होगा उसके प्रतिवेदन के फलस्वरूप अन्तिम वितरण पर आगे विचार हो सकता है, फिर भी करारोपण शक्ति सम्बन्धी अनुच्छेदों में विविध एककों की सामान्य आर्थिक स्थिति और वित्तीय दशा का ध्यान रखा गया है और इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि आधुनिकतम संघानों में यह भावना प्रबल है कि केन्द्रीय सरकार देश के हित में करारोपण करने वाला एकमात्र अधिकरण होता है, पर साथ ही आय को विभिन्न एककों में विभाजित तथा वितरित करने का भी और वित्तीय-सहायता देने का भी उपबन्ध रख दिया गया है।

संविधान सभा ने अंतर्राज्यिक वाणिज्यिक सम्बन्धों के विषय पर काफी समय लगाया है। इस सभा ने, इस सिद्धान्त को रखते हुए कि विविध एककों के मध्य वाणिज्य स्वातंत्र्य संघ को समुचित रूप से चलाने के लिये अनिवार्य है, अंतर्राज्यिक संबंधों को, हमारे संविधान में, भारत जैसे महान महाद्वीप की स्थिति और आर्थिक दशा के अनुरूप ऐसा लचकदार और परिवर्तनशील बनाया है जैसा कुछ ज्ञात संघानीय संविधानों में नहीं है।

संविधान सभा के समूचे भारत के लिये एक राज्य भाषा की आवश्यकता को पूर्णतया समझा जिससे कि राष्ट्र का एकीकरण और संगठन हो सके और ऐसे विस्तृत देश में प्रादेशिक भाषाओं के महत्व को भी पहचाना, अतः इसने ऐसी योजना बनाई है जिससे कि हिन्दी यथासंभव शीघ्र भारत की राजभाषा बन जाये। साथ ही संविधान सभा यह नहीं भूली कि कुछ समय तक वैधानिक प्रयोजनों के लिये

[श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर]

और आज की दुनिया में वैज्ञानिक तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेज़ी की भी अपेक्षा है।

संविधान बहुत भारी भरकम और विस्तृत बन गया है, इस आलोचना पर ध्यान देना व्यर्थ है। अन्य संविधानों के समान उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालयों की रचना और शक्तियां साधारण संसदीय विधान-निर्माण के लिये छोड़ दी गईं हैं, यदि निर्वाचन-व्यवस्था संबंधी उपबंधों को हटा दिया जाये, यदि न्यायाधीशों और असैनिक सेवाओं के वेतनों संबंधी प्रत्याभूतियों को हटा दिया जाये, यदि विद्यमान प्रशासन-व्यवस्था की, जो काम कर रही है, अवहेलना कर दी जाये, यदि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के लिये कोई विशेष उपबंध न रखा जाये, तो संविधान को छोटा करने में और अनुच्छेदों की संख्या घटाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। किन्तु लोकतंत्र-प्रणाली को ठीक प्रकार और कुशलता से चलाने के लिये, यह अनुभव किया गया कि यदि इन उपबंधों को संविधान में न रखा गया, तो हमारा शिशु लोकतंत्र कठिनाई में पड़ सकता है और संविधान को ठीक प्रकार तथा कुशलता से चलाना कठिन हो सकता है। विभिन्न हितों की ओर से इस बात पर जोर दिया गया कि संविधान में ही पर्याप्त रक्षा-कवच रख दिये जायें, और इस सभा के कुछ सदस्यों ने भी, जो संविधान में केवल कुछ मुख्य उपबंधों को ही रखने का सिद्धान्त मानते हैं, विस्तृत उपबंधों को रखने में कम सहायता नहीं की है।

तृतीय पठन के वाद विवाद के समय, भारत के राष्ट्रमंडल का सदस्य होने के प्रश्न का निर्देश किया गया है। इस विषय पर, जब यह मामला इस सभा में विचारार्थ आया था, मैंने अपने विचार प्रकट कर दिये थे। सदन को यह याद दिलाना आवश्यक है कि संविधान में इस विषय पर कोई अनुच्छेद नहीं है। राष्ट्रमंडल की सदस्यता दोनों देशों के ऐच्छिक सहयोग और स्वीकृति पर निर्भर है, और वे दोनों देश सब प्रकार से एक दूसरे से स्वाधीन हैं।

अध्यक्ष महोदय, मूल अधिकारों की चर्चा करते समय मैं एक बात को भूल गया था जिसका निर्देश मैं अब करना चाहता हूं। प्रत्येक व्यक्ति को और प्रत्येक धर्म के अनुयायी को धार्मिक स्वतंत्रता दी गई है, पर राज्य किसी धर्म विशेष को नहीं अपनायेगा। भारत में राज्य-धर्म जैसी कोई वस्तु नहीं है।

यह दावा किया जा सकता है कि संविधान में इसके लिये काफी अवसर दिया है कि भारत गणराज्य उन सब महान उद्देश्यों को प्राप्त कर सके जो इस संविधान की प्रस्तावना में हैं। संविधान में विकास, लचकीलापन और विस्तार के आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। इसमें समाज के लिये किसी विशेष आर्थिक पुनर्संगठन का वचन नहीं दिया गया है, पर जनता को स्वतंत्रता है कि वह जैसे चाहे अपनी भलाई के लिये आर्थिक दशा को ठीक कर और ढाल सकती है। बहुत कुछ हद तक प्रत्येक संविधान उन लोगों पर निर्भर होता है जो कि उसे चलाते हैं। आखिर किसी संस्था को चलाने में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ व्यक्तित्व होती है। यह बात सर्वज्ञात है कि जब अमरीका का अंतिम संविधान स्वीकार किया गया था तब उसके लिये

बहुत कम जोश था, और 'फेडरेलिस्ट' में उस संविधान के पक्ष में अमरीकी लोगों के लिये कई संदेश दिये गये थे। पर आज उस संविधान का ऐसा सम्मान है जैसा बाईबिल में 'आर्क ऑफ़ कवनेंट' का है। अन्य देशों के अनुभव से सिद्ध होता है कि जिन संविधानों की संसार भर में प्रशंसा की गई थी वे असफल सिद्ध हुए हैं। संशोधन का एक सरल उपाय रखा गया है। किन्तु उस का यह अर्थ नहीं है कि आसानी से ही संशोधन कर दिये जायें। फिर तो जनता के पास बस यही काम रह जायेगा कि संविधान में संशोधन पर संशोधन किये जायें।

मैं समाप्त करने से पहले अपना कर्तव्य समझता हूं कि अपने मित्र माननीय डॉ. अम्बेडकर की योग्यता की प्रशंसा करूं जिन्होंने कि इस संविधान को पारित करवाया है और मसौदा समिति के सभापति के रूप में अनथक कार्य किया है। मैं यह भी जानता हूं कि उनकी सहायता मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने योग्यतापूर्वक की है। मुझे श्री बी.एन. राव की सेवाओं की भी प्रशंसा करनी है सह-सचिव श्री मुखर्जी और उनके कर्मचारियों के अनथक परिश्रम, धैर्य, योग्यता और उद्योग की सराहना करना भी मेरा कर्तव्य है।

अंत में, श्रीमान, क्षमा करें, मैं इस सभा में आपके कार्य पर भी कुछ कहना चाहता हूं क्योंकि यह चाटुकारिता कहलायेगी। आपने इस देश की सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया है और यह आपका सफल कार्य है। आपके समान किसी का भी सम्मान नहीं है और किसी से भी प्रेम नहीं हैं और आपने अपने आपको इस सभा के अध्यक्ष पद के योग्य सिद्ध कर दिया है। मैं आपका विशेषत: आभारी हूं क्योंकि मेरा स्वास्थ्य खराब होने के कारण आपने कृपा कर के मुझे अपने आसन से बोलने की अनुमति दे दी और मैं सदस्यों का भी आभारी हूं कि उन्होंने इस विषय में मुझ पर कृपा की है। मुझे इस पर कुछ संतोष है कि मैं शायद इस सभा के कार्य में तथा इसकी विविध समितियों के कार्य में कुछ थोड़ा सा उपयोगी सिद्ध हुआ हूं। *(हर्ष ध्वनि)*।

***श्री हैदर हुसेन** (संयुक्त प्रान्त: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं इस महान प्रगतिचक्र को कंधा देने के लिये खड़ा हुआ हूं जो इस राष्ट्र ध्वज पर अंकित है जो इस हाल के चारों ओर लगाया हुआ है और जिसका प्रतिविंब इस महान रचना में है जो कुछ दिन बाद स्वतंत्र भारत के विधि-संग्रह की शोभा बढ़ायेगी। यह भारतीय पुनरुत्थान में एक महत्वपूर्ण घटना है और राजनैतिक विचारधारा में प्रगति का चिह्न है। स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के फ्रांसीसी नारे ने मानवीय मस्तिष्कों में क्रांति उत्पन्न कर दी और स्वाधीनता की मशाल को दूर दूर तक पहुंचा दिया। उस महान राष्ट्र ने अपने देश में आधुनिक लोक-तंत्र की आधार-शिला रखी और अन्य स्वतंत्रता-प्रेमी देशों में उसका समर्थन किया। उन्होंने अमरीकी राष्ट्र को स्वतन्त्रता की प्रतिमा का जो महान उपहार दिया, वह उनके आज़ादी के प्रेम का प्रमाण है। अमरीकी लोगों ने अपने स्वभावोचित तरीके से उसका मूल्य समझा और उसकी स्थापना न्यूयार्क के दक्षिण में एक द्वीप पर कर दी, और दर्शकों के लिये वह बहुत आकर्षण की वस्तु बन गई है। संसार कभी स्थिर नहीं रह सकता, और मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के साथ साथ राजनैतिक आदर्शों का भी विकास होता है। लोकतंत्र के विषय में फ्रांस वालों के जो विचार थे हम उनसे भी आगे बढ़ गये और उनके त्रिवर्ग में चौथी चीज़, 'न्याय' को जोड़ दिया,

[श्री हैदर हुसेन]

और उसे हमारे संविधान की प्रस्तावना में प्रथम स्थान दिया है। प्रस्तावना किसी भी कानून के अर्थ और क्षेत्र की कुंजी होती है और हम देखते हैं कि प्रस्तावना की भावना बाद के सब उपबंधों में बिखरी हुई है। हम राजनैतिक सिद्धान्तों में प्रगति के भी चिह्न देखते हैं और हम न्यायपूर्वक यह दावा कर सकते हैं कि हमारा संविधान संसार के विद्यमान संविधानों में सबसे आगे बढ़ा हुआ है और हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप भी है। सदस्यों को जो ढेर सारा साहित्य एकत्र करके भेजा गया था वह इस बात का प्रमाण है कि संसार भर के देशों के संविधानों की कितनी विस्तृत खोज की गई है। इस सभा की कार्यवाही इसका स्पष्ट उल्लेख है कि मसौदा समिति ने और सभा के माननीय सदस्यों ने उस साहित्य का पूर्ण प्रयोग किया है। मेरे सम्मानित तथा योग्य मित्र श्री अलादि कृष्णस्वामी अय्यर ने अभी मेरे सामने समूचे संविधान का पारंगत वर्णन करके इसी बात का सबूत दिया है, और इसी चीज़ को दोहराना मेरे लिये अशोभनीय होगा।

यह ठीक है कि संविधान पर बहुत आलोचना की गई है और मैं इसे ठीक ही समझता हूं कि ऐसा हुआ है। इन आलोचनाओं से और लम्बी चर्चा से मूल मसौदे में बहुत सुधार हुआ है। हममें से कुछ के मनों में अब भी जो मतभेद है उन्हें कम से कम कुछ समय के लिये तो अब भूल ही जाना चाहिये। हमें अब भी समझना चाहिये कि आलोचना का समय समाप्त हो गया है और काम करने का समय आ गया है। हमारा कर्तव्य है कि उसे शब्दशः और भावनानुरूप सफल बनाने के लिये संयुक्त प्रयत्न करें। तभी और केवल तभी हमारा देश द्रुतगति से आगे बढ़ सकता है।

हमारा संविधान काफी लचकदार है और मुझे विश्वास है कि सरकार के समक्ष कोई भी ज्ञात आदर्श हो वह इस पर अमल कर सकती है। संविधान किसी दल विशेष के लिये या किसी निश्चित कार्यक्रम के लिये नहीं बनाये जाते। एक लिखित संविधान राष्ट्र की आकांक्षाओं का प्रतिबिंब होता है, और संसार के लिये एक संदेश होता है कि हम क्या चाहते हैं। हमारे संविधान से हमें एक आधार मिल गया है और हमें एक भवन बनाना है जो हमारी प्राचीन बपौती के योग्य होगा। इस महान कार्य में हमें सबको सहयोग देना चाहिये। देश को प्रत्येक नर, नारी और बालक की सेवाओं की आवश्यकता है जो अपने आपको भारतीय कहता है। तभी और केवल तभी हमारे स्वप्न पूरे हो सकते हैं, नव भारत के उस महान प्रवर्तक का स्वप्न पूरा हो सकता है, हां, वह आज हमारे साथ नहीं हैं किन्तु उसके चित्र का प्रकाश हमारी कार्यवाही पर पड़ रहा है।

हम महान बलिदानों के पश्चात् इस स्थिति तक आ पहुंचे हैं। हमें अपना समय सैद्धान्तिक चर्चाओं में और संसदीय वाद-विवाद में नहीं गंवाना चाहिये। हमारा संघर्ष लम्बा और कठोर था। बंगाल के माननीय सदस्य, श्री मैत्र ने दो पीढ़ियों के समय का उल्लेख किया है। इस प्रकार से वे ठीक ही हैं। किन्तु मैं इसे गत शताब्दी के मध्य तक ले जाना चाहता हूं। उस समय, विदेशी नौकरशाही के एक शती के शोषण के पश्चात् हमारे संघर्ष ने विद्रोह का रूप धारण किया था। वह उन्नीसवीं शताब्दी के महान राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग था। वह असफल रहा और उसके पश्चात् ऐसा दमन हुआ कि भारतीय लोग एक पीढ़ी के बाद पुनः उभर सके।

इस बार उसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम से एक अधिक संगठित और सुव्यवस्थित रूप धारण किया। यही उस युग का आरम्भ था जिसकी चर्चा श्री मैत्र ने की है। संघर्ष कठिनाइयों से भरपूर था, और मार्ग में गड्ढे थे और काम जोखिम से भरा था। किन्तु हमारे महान नेताओं ने दृढ़ता से और साहसपूर्वक उस कार्य को किया। हमारे राष्ट्रपिता ने भारतीय राजनीति को जो नया रूप दिया उससे हमारी गति बढ़ गई। उनका नाम अमर रहे। यह संविधान सभा 1946 में अविभक्त भारत का संविधान बनाने के लिये बनी थी। इस काल में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। अपनी स्वतंत्रता को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करने के उद्देश्य से हमारे नेताओं ने देश के विभाजन तक को स्वीकार कर लिया। किन्तु उस समय किसी ने इस बात को नहीं समझा कि इससे मनुष्य अपने भाई के प्रति ही भेड़िया बन जायेगा। उन भयानक अत्याचारों का वर्णन करने का यह स्थान नहीं है किन्तु दुर्भाग्य यह है कि उसके कुछ प्रभाव अब भी शेष हैं और हमारे दैनिक जीवन पर भी उनका असर है। देश इससे भी अधिक उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने में सफल हुआ है और मुझे भरोसा है कि वह इस रोड़े को भी दूर कर देगा जो प्रगति का मार्ग रोके हुए है।

इस संविधान के विविध उपबंधों की आलोचना करने का यह समय नहीं है। आलोचना तो बहुत हो चुकी है, यहां भी और बाहर भी। मेरा उत्तर यह है कि देश के उपलब्ध योग्य व्यक्ति जैसा बना सकते थे वैसा यह है और यदि हम अधिक अच्छा चाहते हैं तो हमें देश में अधिक योग्य और विवेकशील व्यक्ति पैदा करने होंगे। यदि हो सके तो निकट भविष्य में ही। किन्तु मुझे यह कहना ही होगा कि यह रचना ऐसी है जिस पर किसी भी राष्ट्र को गर्व हो सकता है। अतएव हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम इसका पूरे मन से, बिना शर्त, बिना आनाकानी के समर्थन करेंगे। हमने राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, और आज आवश्यकता इस बात की है कि देश का आर्थिक उत्थान हो, और इसी के लिये स्वतंत्रता लेने से कुछ लाभ भी था। इसके लिये अधिक परिश्रम, अधिक कार्य और अधिक त्याग करना पड़ेगा, स्वतंत्रता के युद्ध से भी अधिक। किसी वस्तु को नष्ट करना इतना कठिन नहीं है जितना उसे बनाना है। देश में विदेशी राज्य समाप्त हो जाने पर, हमें रचनात्मक कार्य के लिये पूरा अवसर मिला है। अब हमें अपने भारत के निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिये। जो अपने अतीत के योग्य हो और भविष्य के लिये गौरव हो।

अंतर्राष्ट्रीयतावाद के इन दिनों में हम अपने देश को शेष संसार से अलग नहीं कर सकते। हमें संसार के सब राष्ट्रों के साथ आगे बढ़ना है और तभी हमारा देश राष्ट्रों की बिरादरी में अपना न्यायपूर्ण तथा सम्मानित स्थान ले सकेगा।

दुर्भाग्य से संविधान के निर्माण में मेरा अपना भाग अलग नहीं के बराबर है। मैं ऐसे समय पर आया हूं जब कि कुछ भी सारवान बात नहीं हो सकती है। मेरा यह सौभाग्य है कि तृतीय पठन के समय भारतीय सांविधानिक विकास में मेरा सहयोग रहा है। जब भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम हाउस ऑफ कामन्स में था तब मैं अमरीका से भारत वापस आ रहा था और वहां भी मैं विधेयक की अंतिम स्टेज पर ही उपस्थित था। विधेयक मेरी उपस्थिति में पारित किया गया था और मेरे देशवासियों को यहां जो आनंद प्राप्त हुआ वह मुझे वहां कुछ घंटे पहले हो

[श्री हैदर हुसेन]

गया था। मैं उसे अपने जीवन का स्मरणीय दिवस समझता हूं। इसी प्रकार यहां भी मैं इस संविधान के निर्माण में भी अंतिम स्टेज पर ही सहयोग दे रहा हूं। मैं यहां उनके कहने पर आया हूं जिनसे मेरे प्रान्त वालों के बहुत प्रेम और स्नेह है, और जो देश के सबसे बड़े प्रान्त में सबसे अधिक स्थिर शासन चला रहे हैं। मैं उनके इस सुझाव के लिये उनका आभारी हूं। और मैं इसे वास्तव में बहुत बड़ा सम्मान समझाता कि मैं, इस अन्तिम समय ही सही, इस महान निकाय का सदस्य हूं।

समय कम है और अवसर ऐसा है कि मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता। अतएव मैं हमारे विधि मंत्री के संकल्प का समर्थन करता हूं।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बंबई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, यह संविधान समझौतों के कारण हुए विनिश्चयों से बना है अत: इसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर हमें बहुत गर्व हो सकता है और बहुत सी ऐसी बातें भी हैं जिन्हें हम हटाना चाहते थे। इस समन्वय के प्रयास में, संविधान में कुछ सुसंगति और व्यवस्था कम हो गई है, किंतु उसकी शक्ति और स्थिरता बढ़ गई है। मुझे विश्वास है कि इस संविधान का निर्माण काल असाधारण न होता तो यह अधिक प्रगतिशील होता। संसार भर में अव्यवस्था है भारत भी उससे बच नहीं सकता। इस देश में और बाहर, हमारे चारों ओर जो बेचैनी, अस्थिरता और कोलाहल है—उनका प्रभाव इस संविधान पर बहुत पड़ा है। फिर भी यह लोकतंत्रात्मक संविधान है और इससे सामाजिक समता स्थापित हो जाती है।

कई आलोचकों ने, आपातिक उपबंधों के आधार पर आपत्ति करते हुए, इस संविधान को तानाशाही पूर्ण और फासिस्ट कह कर बुरा बताया है। किन्तु वे भूल जाते हैं कि आपात में भी लोक सभा का ही स्थिति पर नियंत्रण रहता है जो कि अत्यन्त विस्तृत मताधिकार पर चुनी गई होगी। मैं नहीं समझ पाता कि इसे तानाशाही या फासिस्टवाद कैसे कहा जा सकता है। मैं जानता हूं कि प्रांतीय सभाओं को निलम्बित किया जा सकता है, किन्तु प्रान्तीय सभाओं के लिये वही मताधिकार हैं जो लोक सभा के लिये हैं, अतएव प्रान्तीय सभायें अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण होने का दावा नहीं कर सकतीं। हां, हमारी संसद ऐसी सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न नहीं है, जैसे कि इंगिलस्तान में हाउस ऑफ पीपुल है। यह तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि संघीय राज्य में संविधान ही सम्पूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न होता है, राज्य का कोई एक अंग नहीं।

मूल अधिकारों से और प्रान्तीय विषयों के छोटे से क्षेत्र के कारण ही लोक सभा की प्रभुता पर कुछ सीमायें लग गई हैं। किन्तु वे सीमायें तानाशाही या फासिस्ट ढंग की नहीं हैं। इसलिये यह बात स्वाभाविक ही है, कि आपात में भी संविधान पूर्णत: लोकतंत्रात्मक रहेगा, मेरे विचार में यह बात काफी ठीक है।

फिर सामाजिक समता को लीजिये। किसी आधार पर मनुष्य मनुष्य में भेद करने की अनुमति नहीं है और उसे सहन नहीं किया जायेगा और अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया गया है। यह बहुत दु:ख की बात है कि राष्ट्रपिता नये

संविधान के प्रारम्भ को देखने के लिये नहीं रहे हैं, किन्तु यह कुछ संतोष की बात है कि उन्होंने अपने हृदय की सबसे प्यारी बात अस्पृश्यता-निवारण, को सांविधानिक रूप में पूरा होते हुए देख लिया। संविधान की एक और विशेषता यह है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को हटा दिया है, यह वह कीड़ा था जो हमारे राजनीतिक जीवन को अंदर अंदर से खाकर नष्ट कर रहा था।

हमने अपना कार्य पूरा करने में लगभग तीन वर्ष लगाये हैं। कुछ लोगों का गलत ख्याल है कि यह अनुचित रूप में लम्बा समय है। किन्तु मैं उनका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि द्रुतगति से बदलने वाली स्थिति में जल्दबाजी में बनाया हुआ संविधान अधिक गड़बड़ और व्यय का कारण बनता। मान लीजिये हम अपने कार्य को एक दो वर्ष में पूरा कर लेते, तो साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व रह जाता और कम से कम पहले निर्वाचन तो उस सिद्धान्त पर होते ही। अतः मेरे विचार में जो देर हुई है, यदि वह देर है, तो बिल्कुल ठीक ही है, क्योंकि हमने उससे यह अवांछनीय चीज़ हटा दी है।

फिर आर्थिक पहलू को लेते हैं। तो मुझे स्वीकार करना होगा कि यह इस विषय में इतना प्रगतिशील नहीं है जितना राजनैतिक या सामाजिक विषय में है। यह संविधान निस्संदेह समाजवादी नहीं है, किन्तु समाजवाद की ओर कुछ झुकाव अवश्य है, और महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि मतदाता चाहें तो समाजवाद की स्थापना करने में कोई बाधा या रुकावट नहीं है।

हमारे कुछ आलोचकों ने कहा है कि यह सभा प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि यह सीधी वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है, और इस लिये यह संविधान सेवा समाजवादी नहीं बना है जैसा कि यह अन्यथा बनता। मैं इस बात को नहीं मानता। सिद्धान्त के अनुसार यह बात ठीक हो सकती है, किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि इस सभा की रचना के समय निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता तो भी कांग्रेस अवश्य ही अधिकाधिक स्थान प्राप्त कर लेती। और इस लिये इस सभा की बनावट में मुश्किल से ही कोई परिवर्तन होता। इसलिये मेरा निवेदन है कि यह सभा काफी प्रतिनिधित्वपूर्ण है और यह संविधान उस समय के जनमत का सार रूप में प्रतिबिम्ब है जब कि यह बना था।

अब कुछ दोषों को लेता हूं—मैं केवल कुछ ही दोषों का उल्लेख कर सकता हूं—मैं यह कह सकता हूं कि मैं एककों और केन्द्र के बीच संबंधों के विषय में उपबंधों को पसंद नहीं करता। पहले एक बार मैंने कहा था कि हमारा राज्य संघानीय नहीं है, वरन् विकेन्द्रित एकात्मक राज्य है। बाद के उपबंधों, अर्थात् अनुच्छेद 365 और अनुच्छेद 371 से सिद्ध हो जाता है कि मेरी बात ठीक थी। जहां तक भाग 'ख', 'ग' और 'घ' का संबंध है, अधीक्षण और नियंत्रण की शक्ति स्पष्टतः केन्द्र में निहित है और इसलिये उस हद तक राज्य एकात्मक बन जाता है। केवल भाग 'क' के विषय में ही कुछ संदेह हो सकता हैं। जब मैं इस विषय पर बोला था तब मैंने बताया था कि केन्द्र की अधीनता के क्या चिह्न हैं। अब उन्हें दोहराना मेरे लिये अपेक्षित नहीं है। केन्द्र का प्रभुत्व है। किन्तु मेरी शिकायत यह है कि इस कार्य को अप्रत्यक्ष रूप में किया गया है। यदि इस काम को सीधे, स्पष्ट रूप में किया जाता तो मैं बुरा नहीं मानता। एककों को वित्तीय मामलों में पूर्णतः केन्द्र की कृपा पर छोड़ दिया गया है, और मेरे विचार

[श्री बी.एम. गुप्ते]

में यही सबसे आपत्तिजनक बात है कि स्वाधीनता का दिखावा कर के वित्त के मामले में, एककों को केन्द्र के पूर्णतः आश्रित रखा गया है।

फिर मैंने यह भी शिकायत की थी कि राज्य शब्द बिल्कुल असंगत है। एककों की शक्तियों और कृत्यों में जो असमानता है वह संविधान की विशेषता है। नाम के विषय में यह असंगति दूसरी विशेषता है। हां, पहली असंगति के कारण ऐतिहासिक थे, और हम उन्हें हटा नहीं सकते थे; पहले भी कई प्रकार के एकक थे—प्रांत, राज्य, चीफ कमिश्नर के प्रांत आदि। किन्तु इस नाम 'राज्य' के बिना हम काम चला सकते थे। जैसा कि मैंने उस समय सिद्ध किया था, यह असंगतिपूर्ण है, क्योंकि किसी एकक को कोई अवशिष्ट शक्ति प्राप्त नहीं है। भाग 'ख', 'ग' और 'घ' के राज्य निश्चय से केन्द्र के अधीन हैं फिर भी हमने उन्हें 'राज्य' जैसा बड़ा नाम दे दिया है। इससे उनमें अपनी प्रतिष्ठा के विषय में बढ़ी चढ़ी भावना हो सकती है। इस बड़े नाम के कारण वे समझ सकते हैं कि उन्हें कुछ स्वतंत्रता प्राप्त है, किन्तु उनकी आशायें अवश्यमेव धूल में मिल जायेंगी। इस नाम के कारण ही हमें यह दोष दिया जाता है कि हमारा नाम गुणों के अनुसार नहीं है या नाम के अनुसार गुण नहीं हैं। मेरे विचार में, यह असंगत नाम हटा देना चाहिये था।

इसके कारण मैं रचना संबंधी दोषों पर आता हूं। मेरा अवश्य यह ख्याल है कि रचना में सुधार हो सकता था, यद्यपि जहां तक मौखिक सुधारों का संबंध है मैं मसौदा समिति को दोष नहीं देना चाहता। हम लगातार समय के मुकाबले में दौड़ लगा रहे थे और एक के बाद दूसरी अवधि नियत करते थे। जल्दी के काम में मसौदा समिति को इस विषय पर विचार करने का अवसर नहीं मिला। मैं इस बात से भी सहमत नहीं हूं जो कई आलोचकों ने कई बार प्रकट की है कि यह संविधान वकीलों के लिये कामधेनु है। यह हमारे संविधान की कोई नवीनता नहीं है। यह तो सारे ही आधुनिक संविधानों की विशेषता है और इसी प्रकार प्रत्येक विधान की ही यह बात है। संसार इतना उलझा हुआ कि पूर्ण मसौदा बनना असंभव है, और वकीलों की बुद्धि सदा मसौदाकार की बुद्धि को पछाड़ती रहेगी। इसके अतिरिक्त इस संविधान में विस्तृत उपबंधों के कारण निर्वाचन या अभिसमय की कोई गुंजायश ही नहीं रही, और इसलिये कोई नहीं कह सकता कि मसौदा समिति के वकील सदस्यों ने, अपने पेशे के पक्षपात के कारण, इस संविधान को वकीलों के लिये कल्पवृक्ष बना दिया है।

किन्तु मसौदा-लेखन पर मेरी आपत्ति अधिक मूलभूत है। मेरी राय में, उत्तरदायी शासन के अभिसमय के विषय में एक बहुत गम्भीर त्रुटि है। इस मामले में हमने आयरिश संविधान की नकल की है यद्यपि कनाडा या आस्ट्रेलिया के संविधानों में ऐसा उपबंध नहीं है। आयरलैंड के संविधान में एक उपबंध है कि मंत्रिमंडल विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होगा। हमने इसे ले लिया है किन्तु हमने साथ ही उसके इस उपबंध की नकल नहीं की कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की मंत्रणा पर चलने के लिये बाध्य होगा। हमने उसे छोड़ दिया है। मैं असल में नहीं जानता कि क्यों। इससे बहुत भ्रांति उत्पन्न हो गई और कई लोगों का विचार है कि

राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है। अभिसमय के अनुसार तो वह सांविधानिक प्रधान ही होगा। यह सब अनुदेश-लिखित में थी। किन्तु बाद में हमने उस लिखित को भी हटा दिया और इससे इस मामले में स्थिति अनिश्चित हो गई है।

फिर, राष्ट्रपति के विषय में हमने कोई स्वविवेक की शक्तियां नहीं रखी हैं, किन्तु राज्यपाल के विषय में स्वविवेक की शक्ति का उल्लेख है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह अंतर क्यों रखा जाये। हां अभिसमय है, और लोकतंत्र की शक्ति उसके लोगों के और उनके प्रतिनिधियों के चरित्र पर निर्भर है। यदि हमारे प्रतिनिधि काफी सशक्त हैं, तो वे देखेंगे कि उपबंध की संशयप्रद भाषा के बावजूद भी उस अभिसमय पर अमल हो। किन्तु में तो यह कहता हूं कि मुझे यह बात पसंद नहीं है कि इस महत्वपूर्ण मामले में स्पष्टता नहीं है।

आखिर संविधान पर उसके मजमून को या पत्र पर जो कुछ है उसे देखकर निर्णय नहीं किया जा सकता। कनाडा और आस्ट्रेलिया के संविधानों में बहुत से उपबंध हैं जिनसे गवर्नर जनरल को शक्तियां दी गई हैं, किन्तु वास्तव में उन शक्तियों का प्रयोग कभी नहीं हुआ। वीमर संविधान को आदर्श लोकतंत्रात्मक संविधान बताया जाता था, किन्तु उसे शीघ्र ही हिटलर ने तोड़ दिया और उसकी राख में से एक भयानक तानाशाही उत्पन्न हुई जिसने संसार में एक नाशकारी युद्ध करा दिया। अतएव, संविधान से कुछ नहीं होता और उसके बनाने वाले लोगों पर भी कुछ निभर नहीं है, वरन् सब कुछ उन लोगों पर निर्भर है जो संविधान पर अमल करते हैं और जिस भावना से उस पर अमल करते हैं। कोई संविधान कागज़ पर तो अच्छा हो सकता है किन्तु उसकी सफलता इस बात पर निर्भर होगी कि उस पर कैसे अमल होता है।

इस संबंध में कई लोगों को वयस्क मताधिकार के विषय में आशंकायें हैं। उनकी आशंकायें अशत न्यायोचित हैं, किन्तु हमें अपने सिद्धान्तों पर और जनसाधारण पर भरोसा होना चाहिये। अन्य बालकों के समान हमारे शिशु लोकतन्त्र को भी दांत निकलते समय कष्ट होंगे, और उसके नवयौवन पर शरारतें और अल्हड़न की बातें होंगी, किन्तु प्रारंभिक कष्ट और कभी कभी भूल चूक के बावजूद भी, मुझे आशा है कि साधारणः और अंततः जनसाधारण की सामान्य बुद्धि की विजय होगी। हमारा काम तो केवल उपकरण तैयार कर देना था। उस पर अमल करना दूसरों का काम है। जहां तक मैं देख सकता हूं, हम निस्संदेह यह दावा कर सकते हैं कि हमने इसे अपनी योग्यता और ज्ञान के अनुरूप अच्छे से अच्छा बनाया है। यह काफी क्रियात्मक है और काफी लचकदार है। इससे सुरक्षा और स्थिरता तो रहेगी ही। यदि हम इस संविधान के उपबंधों का अध्ययन करें तो, हम देखेंगे कि मसौदा समिति को सबसे अधिक चिन्ता नये राज्य की सुरक्षा की थी। अतएव इस संविधान में प्रगति में बाधा न डालते हुए सुरक्षा और स्थिरता को निश्चित कर दिया गया है। इसमें वैयक्तिक व्यक्तित्व के विकास को कुंठित न करते हुए सामूहिक कल्याण की वृद्धि की गई है। किन्तु, मेरे विचार में संविधान की असली कसौटी यह होगी कि क्या इससे जनसाधारण के कष्टपूर्ण जीवन में, जो वह कई पीढ़ियों से बिता रहा है, शीघ्रतापूर्वक कोई सुधार होगा। यदि इस संविधान से उसे कुछ संतोष प्राप्त होगा तो निस्संदेह मुझे इसके निर्माण में सहयोग देने पर बहुत गर्व अनुभव होगा।

***श्री बलवन्त सिंह मेहता:** (राजस्थान): माननीय सभापति जी, मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूं कि आज मुझे अपने इस असेम्बली के जीवन में पहली बार ही, किन्तु उस समय मौका मिला है, जब कि हमारे स्वतंत्र भारत का स्वतंत्र विधान इस असेम्बली हाल से स्वतंत्र होने जा रहा है। इसलिये मुझे अपने विचार यहां व्यक्त करने में बड़ी खुशी भी हो रही है।

इस विधान पर कई महानुभावों ने काफी प्रकाश डाला है। कुछ ने इसकी स्तुति की है और कुछ ने इसकी टीका की है। लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, टीका करने वालों ने भी केवल नम्रतावश ही टीका की है। हम लोग संकोचशील हैं और कुछ हमारी ऐसी परम्परा भी रही है कि जब तक बाहर के लोग हमारी तारीफ न करें, तब तक हम अपने आपको कुछ कम ही समझते हैं। इसके कई एक उदाहरण भी है, जहां तक मेरा ख्याल है हमने विधान को जितना बड़ा बनाया है उतना ही अच्छा भी बनाया है। इसको जब बाहर के लोग देखेंगे, तो वास्तव में इस पर काफी आश्चर्य प्रकट करेंगे। इस विधान को बनाने में सब ही प्रतिनिधि हमारे विधान समिति के महानुभावों और खास करके डॉक्टर अम्बेडकर साहब, टी.टी. कृष्णमाचारी, श्री अल्लादि कृष्णस्वामी आदि ने इसमें काफी परिश्रम किया है, वे सब ही हमारी बधाई के पात्र हैं। इसके साथ ही हमारे नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और कांग्रेस के नेता और शहीद, जिनकी वजह से हमने आज स्वतंत्र भारत का विधान बनाया हैं, वे सब हमारी श्रद्धांजलि तथा बधाई के पात्र हैं, क्योंकि इन सबका इसके बनाने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पूरा पूरा हाथ रहा है। विधान परिषद् के अध्यक्ष ने सब विचार के लोगों को अपने विचार प्रकट करने के लिये अधिक से अधिक सुविधा दी है। इस देश के प्रतिनिधियों ने भी विधान की विभिन्न धाराओं के ऊपर पूरे विचार विनिमय के बाद उसे मंजूर किया है, अत: ये भी उतने ही धन्यवाद के पात्र हैं।

विधान के आलोचकों ने काफी और कटु आलोचना भी की है, कुछ लोगों का कहना है कि इसमें राष्ट्रपति को काफी सत्ता दे दी गई है, केन्द्र को काफी मजबूत बना दिया गया है और नागरिकों की स्वाधीनता और मौलिक अधिकारों के ऊपर कुछ प्रतिबन्ध भी लगा दिये गये हैं। ठीक है, इसकी सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन हमारी मौजूदा परिस्थिति में देश की हालत को देखते हुए ऐसा करने के लिये हमें विवश होना पड़ा है। और जिन हालात में हमने इस विधान को बनाया है, उनको देखते हुए, यह उचित ही किया गया मालूम होता है। हमारी आज़ादी अभी शैशवावस्था में है और हमारी राष्ट्रीयता भी अभी जड़बद्ध नहीं हुई है। इसलिये भी यह आवश्यक है कि हम ऐसा प्रतिबन्ध लगायें। आपको मालूम है कि हमारे यहां पहले कितने छोटे-छोटे राज्य थे, राजे महाराजे थे और हमारे यहां प्रादेशिक भावना कितनी बढ़ी हुई थी। इन सब बुराइयों ने अपना घर कर लिया था, इसलिये भी आवश्यक था कि इन हालात को मिटाने के लिये हम केन्द्र को मजबूत बनायें। मैं समझता हूं कि विधान पूर्ण रूप से लोकतंत्री है। इसमें स्वतंत्रता और भ्रातृत्व की भावना है, और साथ में इसमें समानता भी रखी गई है, और खास करके इसमें हमने बालिग मताधिकार की एक ऐसी धारा रखी है, जो कि मैं समझता हूं कि, अगर सब धाराओं को उठा भी दिया जाये, तो यह एक ही बात ऐसी है, जिससे यह पूर्ण लोकतंत्री माना जा सकता है। इस वक्त हमारे राष्ट्र ने बड़े खतरे को भी मोल लेकर बालिग मताधिकार को रखकर लोकतंत्र की रक्षा की है।

कुछ लोगों का कहना है कि इसमें प्राचीन-शासन प्रणाली का अनुसरण नहीं किया गया है। आपको मालूम होना चाहिये, इस समय हमारे पास प्राचीनता का बहुत कम और धुंधला सा रूप मौजूद है और हमारे पास इसकी कोई रूप रेखा भी नहीं है, फिर भी जहां तक मेरा खयाल है, इसमें ऐसे काफी तत्वों का समावेश किया गया है, जिससे हमारी संस्कृति की रक्षा होती है।

एक बात जरूर इसमें खटकती है। मेरे खयाल से जिस प्रकार से हमारे राष्ट्र-पिता ने हमको आजादी दिलाई, और वह एक खास ढंग से दिलाई, उस प्रकार से हम को राजनैतिक आजादी मिल गई, लेकिन हमारी आर्थिक आजादी अभी प्राप्त करना बाकी है। अतः महात्मा गांधी का आदर्श यानी उनके गांधीवाद का इसमें समावेश होता, तो यह वास्तव में सोने में सुगन्ध का काम देता। और हमारा विधान ऐसा होता, जिससे बाहर वाले भी सबक सीख सकते। आज संसार में घोर अशांति छाई हुई है। अगर अन्य राष्ट्र किसी की तरफ इस अशांति से मुक्ति पाने के लिये देख रहे हैं, तो वह भारत की तरफ की देख रहे हैं। अगर हमारे विधान में गांधीवाद और खास कर गांधी जी की आर्थिक योजना का समावेश और उनके सामाजिक आदर्शों का उल्लेख होता, तो और भी अच्छा होता। अस्तु, राष्ट्र के विकास के साथ विधान का भी विकास होता है। मौलिक अधिकारों की गारन्टी, बालिग मताधिकार और साम्प्रदायिकता का बहिष्कार, विधान में ये तीन चीजें ऐसी हैं, जिस पर हम सबको बड़ा गौरव हो सकता है। इस विधान में हमारी जो आकांक्षायें व्यक्त हुई हैं, उनपर वास्तव में हमको गौरव होना चाहिये। राष्ट्रों के विधान अपरिवर्तनशील नहीं होते, भविष्य में जब भी प्रतिनिधि इसमें परिवर्तन चाहेंगे, तत्काल कर सकेंगे और यह हमारे हाथ में एक ऐसा साधन है, जिसे हम अपनी आवश्यकतानुसार बदल कर देश की उन्नति कर सकेंगे।

देशी राज्यः देशी राज्यों की प्रजा के लिये यह विधान सबसे ज्यादा उल्लासप्रद है। सबसे बड़ा कार्य अगर इन दिनों में कुछ हुआ है, तो यह हुआ कि हमारे यहां जो 562 छोटी-बड़ी राज्यशाहियां थीं, सामन्तशाही का दौर दौरा था, वह एक दम से मिटा कर रियासतों को प्रान्तों के बराबर बना दिया गया। यह एक ऐसा कार्य है जिसके लिये सारे संसार के अच्छे से अच्छे वैधानिक भी इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकेंगे और इसके लिये हमारे सरदार पटेल विशेष धन्यवाद तथा बधाई के पात्र हैं।

साथ ही हमारे यहां पर जागीरदारी का काफी दौर दौरा है और आज इसके कारण काफी डाके पड़ रहे हैं, कहीं लूट हो रही है, हत्यायें की जा रही हैं, इससे लोगों में काफी आतंक छाया हुआ है। मैं समझता हूं कि हमारे विधान के आरम्भ होते-होते यह सब व्यवस्था भी ठीक हो जायेगी।

राष्ट्र भाषाः दूसरा जो सबसे बड़ा काम, मैं समझता हूं, हमारी आजादी के बाद हुआ है, वह है हमारा अपनी राज भाषा को स्वीकार करना। हमने हिन्दी को राज भाषा स्वीकार किया है। और यह स्वयं अकेला ही ऐसा कार्य है, जो हमारे सारे राष्ट्र को एक सूत्र में रख सकता है और रखेगा। यह बहुत बड़ा कार्य हुआ, लेकिन अब हमें राजभाषा को राष्ट्र भाषा बनाना है। इस काम की खास

[श्री बलवन्त सिंह मेहता]

कर जिम्मेदारी उन लोगों के ऊपर है, जिनकी भाषा हिन्दी है और अन्य दूसरे सब भाई इसमें इस प्रकार सहयोग दें कि हमारी यह भाषा इतनी सरल और सुगम होकर सारे भारतवर्ष में एक राष्ट्र भाषा के रूप में व्यापक हो जाये।

एक खेद वाली बात यह है कि हमारी प्रादेशिक भाषाओं की जो सूची स्वीकार की गई है, उसमें हमारी 'राजस्थानी' को स्थान नहीं दिया गया। यह डेढ़ करोड़ मनुष्यों की भाषा है और इसमें बड़ा साहित्य है और हिन्दी के प्राचीन और वीर रस के साहित्य में इस भाषा का काफी ऊंचा स्थान रहा है। ऐसी भाषा को उस सूची से अलग रखना हमारे लिये काफी दु:ख की बात है। मैं समझता हूं कि हमारे महारथी आगे इसको पार्लियामेंट के द्वारा प्रादेशिक भाषाओं की सूची में अपना उचित स्थान दिलायेंगे।

एक बात जो देशी रियासतों को और खासकर राजस्थानियों को खटकने वाली और आघात पहुंचाने वाली हुई है, वह हमारे रियासती सचिवालय के द्वारा सिरोही का विभाजन है। सिरोही एक ऐसा स्थान है, जो कि राजस्थान में एक बहुत महत्व का स्थान रखता है। सिरोही का मतलब राजस्थानी में तलवार से होता है और वह वास्तव में राजस्थान की तलवार है। हमारे श्रद्धेय नेता सरदार साहब ने हमारे महाराणा प्रताप का राजस्थान निर्माण का स्वप्न पूरा किया था, लेकिन अगर उसकी यह तलवार तोड़ दी जाती है, तो मैं समझता हूं कि यह एक ऐसी चीज़ है, जिससे प्रत्येक राजस्थानी को दु:ख होगा। सिरोही का सम्बन्ध बराबर राजस्थान से रहा है। वह राजस्थान की भाषा से, भूगोल से, और इतिहास से बराबर सम्बन्धित रहा है। कम से कम एक हजार वर्ष का ऐसा इतिहास है, जिससे यह कहा जा सकता है कि सिरोही बिल्कुल राजस्थान का अविभाज्य अंग है। आबू में महाराणा कुम्भा ने अचलगढ़ का किला इसी लिये बनाया था कि वह गुजरात के हमले से राजस्थान की रक्षा कर सके, इसके खंडहर आज भी मौजूद हैं। आज भी राजस्थान के धनी लोगों का लाखों रुपया वहां लगा हुआ है, और इतिहास से, परम्परा से, भूगोल से और सब तरह से वह हमारा अंग है और इस प्रकार उसका अंगभंग होना राजस्थान के लिये बड़े दु:ख की बात है। मैं समझता हूं कि इसके लिये हमारे समस्त देशी रियासतों के प्रजाजनों को दु:ख हुए बिना नहीं रहेगा। यह इस प्रकार का बंटवारा किया गया है कि जिसकी न तो जनता की ओर से मांग थी और न राजा की ओर से ही। न वहां की कांग्रेस कमेटी ने और न वहां की प्रजा ने ही कभी यह मांग की है। जब से वह बम्बई में मिलाया गया है, तब से वहां के निवासियों की यही मांग चली आ रही है कि हम राजस्थान के रहने वाले हैं और हम राजस्थान में रहेंगे। लेकिन अचानक और जिस गोपनीय ढंग से उसका बंटवारा हुआ, इसको सुनकर प्रत्येक आदमी चकित हो जाता है। जिस रोज उसका ऐलान यहां असेम्बली हाल में किया गया था, मुझे मालूम है कि उस समय हमारे भाग्य से हमारे नेता पं. जवाहर लाल जी भी यहां मौजूद थे, वे और सभी अन्य सदस्य बड़े गौर से और स्तम्भित होकर उस आदेश को सुन रहे थे, जिसमें यह कहा गया था कि आज से सिरोही का विभाजन हो गया। हमें नहीं मालूम कि विभाजन किस प्रकार हुआ है, लेकिन जहां तक हमारा ख्याल है, यह विभाजन आबू को लेकर हुआ है। आबू सिरोही और राजस्थान का खास अंग रहा है। यह हमेशा से राजपूताना का एक भाग और अंग्रेज़ी शासन-काल में राजधानी के रूप

में रहा था और उसका राजस्थान से करीब एक हज़ार वर्ष का बराबर सम्बन्ध चला आ रहा है। वहां के लोग हिन्दी भाषा-भाषी हैं और राजस्थानी भाषा बोलते हैं। वहां पर गुजराती बोलने वाले बहुत ही कम होंगे। शायद तीन या चार परसेंट मुश्किल से मिलें। ऐसा करने के लिये राजस्थान की जनता की ओर से कोई मांग नहीं थी और न राजा की ओर से ऐसा करने का संकेत ही था। बहुत से कविनेंट हो चुके हैं, पर यह पहला कदम है कि जहां बिना राजा के पूछे हुए या प्रजा के पूछे हुए किसी प्रदेश का विभाजन किया गया है। तो मैं समझता हूं कि यह एक ऐसी चीज़ हुई है कि जिससे राजस्थानियों को बहुत ही दु:ख होगा और मैं आशा करता हूं कि यह भूल जल्दी ही ठीक कर ली जायेगी।

हमारे विधान में एक सबसे बड़ी बात यह हुई है कि हमारे भारत के ऊपर जो एक बहुत बड़ा कलंक अस्पृश्यता का था, उसको इस विधान के द्वारा हमेशा के लिये मिटा दिया गया है। यह खास कर सबसे बड़ी गर्व और खुशी की बात हुई है। इसका श्रेय हमारे नेताओं को और खासकर ठक्कर बापा को है। उनका सारा जीवन आदिवासियों और हरिजनों की सेवा में बीता है। ठक्कर बापा की सेवा और महात्मा गांधी का त्याग और तपस्या का फल है कि आज हम इस कलंक को धो सके। आपको मालूम होगा कि हमारे हिन्दुस्तान में करोड़ों ऐसे आदिवासी हैं, जो विकट जंगलों में रहते हैं। उनको सबसे पहले जगाने वाले हमारे श्रद्धेय ठक्कर बापा ही हैं। वह आज इस अवस्था में भी, उनके लिये वहां जाते हैं और उनको चेतना देते हैं। मैं ठक्कर बापा को भी इस मौके पर, इस राष्ट्रजागृति के लिये, अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। हमारे राजस्थान में भी काफी संख्या में आदिवासी और हरिजन रहते हैं और मेरी प्रार्थना है कि जिस प्रकार मध्य भारत में उन के लिये एक मिनिस्टर रखा गया है, उसी प्रकार से हमारे यहां भी इस तरह के एक मिनिस्टर की योजना की जानी चाहिये थी। हमारे राजस्थान के प्रधान मंत्री जी भी यहां मौजूद हैं। मेरी उनसे अपील है कि वे जल्दी ऐसा प्रबन्ध करें। वे लोग करीब तीस लाख की संख्या में हैं और उनकी दशा काफी गिरी हुई है और अब तक उनके लिये कोई खास कदम नहीं उठाया गया है। इसलिये अगर हमें इन भाइयों को अपने स्तर पर लाना है तो हमारा और आप सब लोगों का फर्ज़ है कि हम इस कार्य में पूरा पूरा योग दें।

विधान को जितना अच्छा हम बना सकते थे बनाया है। अब हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी कांस्टीट्यून्सीज़ में जायें और इस विधान को हम अपने गांवों में लोगों को समझावें, जहां कि हमारा कार्य क्षेत्र है। शिक्षा व प्रचार के अभाव में कभी कभी जनता में बड़ी गलतफहमी फैल जाती है। आम जनता के लिये तो स्वराज्य और विधान का यही मतलब है कि उन लोगों को खाने के लिये रोटी, पहनने के लिये कपड़ा, रहने के लिये मकान और शिक्षा मिले। लेकिन यद्यपि इस विधान में इसका कोई स्पष्ट संकेत नहीं है, फिर भी हम अपने कार्यों से इस विधान को ऐसा बना सकते हैं कि जिससे जल्दी से जल्दी ऐसी व्यवस्था उनके लिये की जा सके कि उनके दु:ख जल्दी ही दूर हो जायें। लेकिन यह कब होगा, जब हम महात्मा गांधी के आदर्शों पर चलेंगे। जिन का इसमें पहले संकेत किया गया है। इसके लिये हमको अपनी फ़जूल खर्ची को भी कम करना होगा हमें ऊपर वालों के रहन सहन को थोड़ा नीचे लाना पड़ेगा और नीचे वालों

[श्री बलवन्त सिंह मेहता]

के रहन-सहन को ऊपर लाना पड़ेगा। हमारा शासन काफ़ी खर्चीला होता जा रहा है। मैं समझता हूं कि इसकी वजह अंग्रेज़ी शासन का प्रभाव है। हमारे वर्तमान शासन के काफी खर्चीले होने के कारण ही विधान को भी काफी खर्चीला रखा गया है। अगर इसके सुधार की ओर ध्यान दिया जाता, तो ज्यादा अच्छा होता और अब भी यह शासन-व्यवस्था के हाथ में है कि इसको ऐसा रूप दे, जिससे गरीबों को ज़्यादा लाभ पहुंचे।

बस यह कह कर मैं डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा हमारे विधान को पास करने के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और महात्मा गांधी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं कि जिनकी तपस्या और बलिदान से आज हम यह दिन देख पाये हैं कि भारत के स्वतंत्र होने के बाद हम अपना विधान भी पूरा कर सके।

तत्पश्चात् सभा मध्याह्न भोजन के लिये तीन बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

सभा मध्याह्न भोजन के पश्चात्, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में, तीन बजे समवेत हुई।

श्री नंदकिशोर दास (उड़ीसा: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे इस संविधान पर खंडश: चर्चा में भाग लेने का अवसर बिल्कुल नहीं मिला था अतएव मैं इस अंतिम अवसर से ही लाभ उठा कर संविधान पर जिस रूप में कि यह गत लगभग तीन वर्षों के विचार विमर्श से पश्चात् अंतत: बना है, कुछ व्यापक बातें कहना चाहता हूं।

मुझे उन बातों का ध्यान आता है जबकि दिसम्बर 1946 में हम संविधान सभा में प्रथम बार समवेत हुए थे। उस समय देश में राजनैतिक आकाश श्यामघनों से आच्छादित था और अपशकुनों तथा अशुभ लक्ष्णों से भरा था और हमारे मन में काफी संदेह और चिन्ता थी कि क्या वे विरोधी तत्व और विचार भेद वाले वर्ग, जो संविधान सभा में थे, एक सर्वसम्मत तथा संतोषजनक संविधान बना सकेंगे, जो समूचे देश को स्वीकार्य हो।

संविधान सभा की प्रारंभिक कार्यवाही के पश्चात् द्रुतगति से जो घटनायें हुईं, जिनका परिणाम सत्ता का हस्तांतरण और देश का विभाजन हुआ, उनसे ये अनिश्चितता बहुत हद तक दूर हो गई। सभा से हठी तत्वों के गायब हो जाने से रास्ता साफ हो गया कि संविधान सभा अधिक सुखद परिस्थिति में और अधिक अच्छे वातावरण में अपना कार्य आरंभ कर सके। किन्तु फिर भी ऐसे देश के लिये संविधान बनाना बहुत कठिन कार्य था जिसमें इतने विभिन्न तत्व हों और इतने अनेक हित हों, अत: हममें से अत्यन्त आशावादी लोगों को भी हमारी अंतिम सफलता में स्वभावत: संदेह हो रहा था।

अतएव यह एक सर्वोच्च संतोष की बात है, और इसके लिये हमें अपने नेताओं और संविधान निर्माताओं की सहिष्णुता की भावना को श्रेय देना चाहिये, कि इस

संविधान सभा का परिश्रम अंततोगत्वा सफल हो गया और हमारे समक्ष एक संविधान है जो अपने परिमाण में और उसके अन्दर जो कुछ लिखा है उसके मूल्य में, संसार के सर्वोत्तम संविधानों में से हो सकता है। सदन में एक वर्ष पूर्व संविधान का मसौदा पेश करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि इस संविधान में 313 अनुच्छेद हैं इस लिये यह संसार में सबसे भारी संविधान है, और अब तो अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 395 हो जाने पर यह और भी भारी हो गया है। हमारे नेताओं और संविधान निर्माताओं को हम हार्दिक बधाई देते हैं कि उन्होंने अन्य कार्यों के होते हुए भी इस स्पष्टतः भागीरथ कार्य में योग दिया है। इस संविधानिक ढांचे का रक्त मांस तो हमारे वर्तमान नेताओं और उनके पूर्ववर्ती अनेक क्रांतिकारियों की देन है, किन्तु उसकी अस्थियां और मांस-पेशियां, दूसरे शब्दों में संविधान का असली ढांचा, मसौदा समिति के परिश्रमों का ही फल है, जिसके अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने ही पूर्ण योग्यता से इस महान कार्य को अकेले अपने कंधों पर वहन किया।

इस संविधान की बहुत सी सराहनीय बातें हैं जिसकी ओर इतने माननीय सदस्यों ने पहले ही ध्यान आकर्षित कर दिया है और मैं उन सब का निर्देश करना आवश्यक नहीं समझता। देश की समस्त वयस्क जनता को मताधिकार देना इस संविधान का सबसे बड़ा लोकतंत्रात्मक कार्य है। सदन के माननीय सदस्यों को यह जान कर दिलचस्पी होगी कि इस संविधान में जिन लोगों को मताधिकार दिया गया है, उनकी संख्या सोवियत रूस की समस्त जनसंख्या से अधिक नहीं तो लगभग बराबर है। वयस्क मताधिकार निस्संदेह हमारे चिराकांक्षित और प्रायः घोषित इच्छा की पूर्ति है किन्तु देहात में आज जो अव्यवस्थित वस्तुस्थिति है उसमें इसकी सफलता होगी या नहीं यह संदेह और चिन्ता का विषय बन गया है। मूल अधिकार इस संविधान का एक और महान अध्याय है। इन अधिकारों पर इतने उपयोगी निर्बन्धन लगाये गये हैं उनसे उनकी उपादेयता कम नहीं होती, वास्तव में उनके कारण वे अधिकार और भी अधिक मूल्यवान बन जाते हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नागरिकों को जो अधिकार दिये गये हैं उनका अर्थ यह न बन जाये कि 'नागरिक स्वातंत्र्य' के अशुद्ध नाम से होने वाली कार्य-स्वतंत्रता जैसी बातों के लिये खुली छुट्टी मिल जाये। कुछ मित्रों ने हमारे मूल अधिकारों की अपर्याप्तता की शिकायत की है। मेरे माननीय मित्र श्री लक्ष्मी नारायण साहू ने तो यहां तक कह डाला है कि ब्रिटिश राज में जो नागरिक अधिकार थे वे भी वर्तमान संविधान में कम कर दिये गये हैं। मैं अपने मित्र श्री साहू जी और उनके विचारों वाले अन्य लोगों को एक समाचार का निर्देश करना चाहता हूं जो आज के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में 'रेलवे अधिकारी पर विद्यार्थियों द्वारा आक्रमण' शीर्षक के अंतर्गत छपा है:—

> "कुल्हाड़ों, लोहे के छड़ों और हाकी स्टिकों से लैस, स्थानीय इंग्लिश हाई स्कूल के 40 विद्यार्थियों ने यहां पास के घुसिया कला रेलवे स्टेशन पर टिकट बाबू को गार्ड के डिब्बे से बाहर घसीट लिया और उसे घायल कर दिया। उस टिकिट बाबू ने कुछ विद्यार्थियों से, जो प्रथम श्रेणी में बिना टिकट चल रहे थे, किराया चार्ज किया था। उसे अपने सख्त घावों के उपचारार्थ सैदा हस्पताल में भरती किया गया।"

[श्री नंदकिशोर दास]

यदि मेरे माननीय मित्र श्री साहू की नागरिक स्वतंत्रता में ऐसी असामाजिक और राष्ट्रीयता विरोधी कार्यवाहियां भी शामिल हैं तो मुझे इस पर सचमुच खेद है।

अधिकारों के साथ कुछ कर्तव्य भी होने चाहिये। अच्छा होता यदि संविधान में मूल अधिकारों के साथ साथ यह भी होता कि नागरिकों को उन अधिकारों के योग्य बनने के लिये क्या क्या विशिष्ट कर्तव्यों का पालन करना होगा।

अस्पृश्यता का अंत, किसी रूप में अस्पृश्यता के कारण किसी निर्योग्यता को लागू करना कानून के अनुसार दंडनीय अपराध माना जायेगा, साम्प्रदायिक निर्वाचक-मंडल के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन, ये सब संविधान की अन्य सुखद विशेषताऐं हैं। अनुच्छेद 36 से 51 में जो संविधान के भाग 4 में हैं, अर्थात् राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त हैं, संसार भर की, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक या आर्थिक नीति के सर्वश्रेष्ठ और महानतम सिद्धान्तों का निचोड़ है। मुझे आश्चर्य है कि इन सब सुन्दर उपबंधों के होते हुए, कुछ क्षेत्रों ने इस संविधान को कैसे प्रतिक्रियात्मक और पिछड़ा हुआ बता दिया है। क्यों मैं उन अनुदार आलोचकों से कह सकता हूं कि वे एकत्र होकर कोई दूसरा संविधान बनाकर दिखायें जो देश की आवश्यकताओं के अनुसार व्यवहारिक संविधान होना चाहिये, किसी स्वप्न-देश के लिये न हो।

किन्तु यह स्वीकार करना ही होगा कि यह संविधान संसार के सर्वोत्तम कागज़ी संविधानों में से होते हुए देश में काफी उत्साह उत्पन्न नहीं कर सका है और संविधान के अत्यन्त प्रशंसकों के मन में भी संदेह है कि इसमें कुछ कसर है और यह यथेष्ट वस्तु नहीं है। कुछ मित्रों ने शिकायत की है कि यह संविधान गांधी जी की विचार धारा के अनुरूप नहीं है और इसी कारण उन्हें बहुत निराशा हुई है। मैं वैयक्तिक रूप में अपनी ओर से कह सकता हूं कि मुझे इस बात पर जरा भी निराशा नहीं है कि यह संविधान गांधी जी के आदर्श के अनुसार नहीं बना है, क्योंकि मुझे हमारे संविधान निर्माताओं से गांधीवादी संविधान की जरा भी आशा ही नहीं थी। हम सब राष्ट्रपिता का नाम लेते हैं किन्तु हमने कितनों ने अपने दैनिक जीवन में उनके उपदेशों को अपनाया है? हममें से कितने हैं जिन्हें प्राचीन आत्मभरित ग्राम प्रणाली पर समाज का निर्माण करने में अखंड विश्वास है? गांधीवादी संविधान केवल मशीनी तरीके से नहीं बन जायेगा, उसके लिये यह आवश्यक है कि उनके विचारों के सर्वथा अनुरूप समाज को बनाने का हमारा पूर्ण विश्वास हो और दृढ़ निश्चय हो। यह दृढ़ निश्चय देश में लगभग कहीं भी नहीं है। अतः गांधीवाद से विहीन दिमागों से गांधीवादी संविधान का निकलना संभव है ही नहीं। गांधी जी ने अपने जीवन भर में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर ज़ोर दिया किन्तु हमारा संविधान बिल्कुल उल्टे ही मार्ग पर चला है, वह है अत्यधिक केन्द्रीयकरण। हमारे नेताओं का विचार है, और ठीक भी है, कि सशक्त केन्द्र नहीं होगा तो इस शिशु लोक तंत्र को सब ओर से विघ्नशील शक्तियों द्वारा नष्ट होने का खतरा रहेगा। स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् देश में जो घटनायें हुई हैं, उससे इस प्रकार के संविधान का औचित्य पर्याप्त रूप में सिद्ध हो जाता है। अतः संविधान के लिये उत्साह की कमी का ठीक-ठीक कारण ढूंढा जाये तो वह संविधान में किसी आंतरिक त्रुटि के कारण नहीं है, इसका कारण वह परिवर्तनशील और दुःखद

परिस्थिति है जो इस देश में स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् ढाई वर्ष से चल रही है। इन परिस्थितियों में संविधान में झूठे सच्चे दोष निकाल कर उसे बुरा बताने से कोई लाभ नहीं होगा, और जनता के सब वर्गों के लिये सर्वोत्तम और सबसे अधिक देश-प्रेम पूर्ण मार्ग यही है कि सब एक हो कर इस नये गणराज्य-संविधान को सफल होने का अवसर दें और इस प्रकार देश के नेताओं द्वारा नवार्जित स्वतंत्रता को पक्का करने के कार्य में अखंड श्रद्धा प्रकट करें।

श्रीमान, मैं समाप्त करने से पूर्व अपना कर्तव्य समझता हूं कि आपने इस सदन की कार्यवाही को जिस न्यायपूर्ण और निष्पक्ष ढंग से चलाया है और इस प्रकार इस कार्य की सफलता में कम योग नहीं दिया है, उसके लिये सम्मान और सराहना की नम्र श्रद्धांजलि पेश करूं।

***सरदार सुचेत सिंह** (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य-संघ): अध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा को बधाई देने के लिये खड़ा हुआ हूं कि इसका तीन वर्ष का परिश्रम सफल हो गया है और देश का संविधान इस अंतिम रूप में तैयार हो गया है। देश को अपने महान नेताओं का, सुविख्यात विधि-वेत्ताओं का, भाषाविज्ञों, वैयाकरणों और विद्वानों का आभारी होना चाहिये कि उन्होंने कठोर और ध्यानपूर्वक परिश्रम करके अपनी इस मातृभूमि को ऐसी वस्तु पेश की है जो उन्होंने अपनी सच्चाई और विवेक के अनुसार करोड़ों नरनारियों और बालकों के लिये सर्वश्रेष्ठ समझी, क्योंकि वे ही करोड़ों व्यक्ति इस महान उप-महाद्वीप में रहते हैं और अब वे देश के मामलों में प्रभुता और अंतिम शक्ति उन्हीं लोगों में निहित है।

श्रीमान, सांविधानिक ढांचा किस प्रकार का होना चाहिये और किस दिशा में उसका रुख होना चाहिये, इस विषय पर काफी कहा जा चुका है। हमने कार्य आरम्भ किया तब हमारे दिमाग में किसी विशेष सिद्धान्त के प्रति या विरुद्ध पक्षपात नहीं था। हम संघानीय, एकात्मक या किसी अन्य प्रकार के ढांचे के रखने पर तुले हुए नहीं थे। हमारे सामने अन्य उन्नत देशों के इतने संविधानों के मज़मून और अनुभव थे। हमने उनमें सर्वोत्तम बातें चुनने का प्रयत्न किया जो हमारी स्थिति के और विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप हो जो हमारी परंपराओं और गत अर्धशताब्दी के शासकीय संस्थानों के अनुभव के अनुरूप हो। परिस्थितियों की ऐतिहासिक व्यापकता के साथ साथ हमें गत 27 मासों में देश के शासन का व्यवहारिक अनुभव भी हो गया और अंतर्राष्ट्रीय तथा विश्व समस्याओं के संबंध में अपनी सामाजिक और घरेलू समस्याओं की हमें समुचित और वास्तविक समझ भी आ गई, और इस परिस्थिति में और पृष्ठभूमि पर हमें अपने संविधान के गुणावगुण का निर्णय करना चाहिये और उसे समझना चाहिये।

श्रीमान, मैं उन लोगों में से हूं जो यह अनुभव करते हैं और विश्वास करते हैं कि हमारी नवप्राप्त स्वतंत्रता के हित, संगठन और स्थायित्व के लिये यह आवश्यक है कि एक सबल केन्द्र हो और साथ ही प्रांतीय और स्थानीय स्वायत्तता भी समुचित रूप से और स्वतंत्र रूप से चल सके। हम केवल कुछ नारों और आन्दोलनों का समाधान मात्र करने के लिये अत्यधिक विकेन्द्रीकण जैसी चीज़ स्वीकार नहीं कर सकते। ठीक है कि इतने बड़े देश में, जहां 34 करोड़ जनसंख्या हो, और विविध स्थानीय समस्याएं हों, एकात्मक शासन-व्यवस्था अनुपयुक्त है, परन्तु

[सरदार सुचेत सिंह]

एक पूर्णतया विकेन्द्रित शासन-योजना से तो निश्चय ही विघटनशील शक्तियां छूट पड़ेंगी और फलतः देश अंत में खंड खंड हो जायेगा, विशेषतः इसलिये कि हमारे मध्य प्रांतीयता, साम्प्रदायिकता, भाषावाद और सामाजिक तथा आर्थिक असमता का बहुमुखी राक्षस सदा मुंह बाये खड़ा है।

कुछ मित्रों ने नागरिक स्वाधीनता को देवता ही बनाने का प्रयत्न किया, जो, उनके कथनानुसार तभी समाप्त होनी चाहिये जब कि नागरिक सत्ता ही समाप्त हो जाये। ऐसा कहना केवल मनोरंजन का विषय है, या विचित्र बात है। यह तो ऐसे ही है कि कोई किसी देवता को नष्ट करने पर तो आपत्ति न करे किन्तु उसी की उपासना में विध्न डालने पर आपत्ति करे। स्वाधीनता के दुरुपयोग पर उपयोगी निर्बन्धन और बाधायों होनी चाहिये तभी हम अपने देश के खंडन को और शासन व्यवस्था के टूटने को रोक सकते हैं।

कुछ मित्रों ने यह दुःख प्रकट किया है कि हमारे संविधान में काम करने का अधिकार नहीं रखा गया है। अनुच्छेद 19 खंड (छ) में लिखा है "सब नागरिकों को कोई वृत्ति उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।" यदि यह काम करने का अधिकार नहीं है, तो मुझे आश्चर्य है कि काम करने की भावना को किस भाषा में अधिक अच्छी तरह से और स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता था।

पूर्वी पंजाब के मेरे दो सिख मित्रों ने अल्पसंख्यकों संबंधी उपबंधों पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की है। मैं यह बता देता हूं कि धार्मिक या मूलवंशीय "अल्पसंख्यक" शब्द तो कहीं भी संविधान में आया ही नहीं है। किन्तु सम्प्रदाय शब्द को, जो साम्प्रदायिकता नामक गंदी मनोवृत्ति का मूल है, आंग्ल-भारतीयों के संबंध में रख दिया गया है। मैं स्वीकार करता हूं कि आंग्ल-भारतीय कोई धार्मिक वर्ग नहीं हैं, वरन् वे एक मूलवंशी सम्प्रदाय हैं, जो सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक रूप में इतना उन्नत है कि उसे कोई विशेष रियायत देने में कोई औचित्य नहीं है। निस्संदेह, उनके पिछड़े हुए होने के कारण किसी अन्य कारण से ही उन्हें यह अधिकार दिया गया है कि वह अनावश्यक और अशोभनीय पक्षपात के उपबन्ध को रखकर संवधिान को कुरूप बनायें। विद्यमान सेवाओं के लिये जो रक्षा-कवच रखे हैं वे उनके हितों की रक्षा के लिये पर्याप्त समझे जा सकते हैं, परन्तु भविष्य में भरती के विषय में उनके पक्ष में कोई विभेद करने पर अन्य जातियां न्यायपूर्वक आपत्ति कर सकती हैं। सिख आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय को दी गई रियायतों पर तो आपत्ति कर सकते हैं, पर इसके अतिरिक्त अपने लिये कोई अनुचित रियायत मांगने का उन्हें कोई न्यायपूर्ण अधिकार नहीं है। सिखों का प्रश्न भावना का नहीं है, सार का है। मूल प्रश्न यह है कि क्या सिख सामाजिक, शैक्षणिक या आर्थिक या किसी अन्य क्षेत्र में किसी प्रकार पिछड़ा हुआ सम्प्रदाय है। मैं कहता हूं कि ऐसी बात नहीं है। समाज में उनका सम्मान है और आर्थिक रूप में वे समृद्ध हैं क्योंकि वे उद्यमी और परिश्रमी होते हैं। गत मास पटियाला में सिख शिक्षा सम्मेलन में बताया गया था कि गत जनगणना के अनुसार पंजाब के मुस्लिमों में साक्षरता का स्तर 9 प्रतिशत था, हिन्दुओं में 16 प्रतिशत और सिखों में $17^{1}/_{2}$ प्रतिशत था।

इसी वर्ष पूर्वी पंजाब लोक-सेवा आयोग ने प्रांतीय सेवाओं के लिये सफल अभ्यर्थियों की सूची बनाई जिसमें अस्थायी रूप से स्वीकृत अनुपात से 40 प्रतिशत सिखों को और 60 प्रतिशत अन्यों को रखा गया। पूर्वी पंजाब के मुख्य मंत्री श्री भीमसेन सच्चर ने वह सूची लोक सेवा आयोग को यह सिफारिश करके भेज दी कि सूची को पूर्णत: योग्यता के आधार पर बनाया जाये और फलत: सिख अभ्यर्थी 40 प्रतिशत से भी अधिक आ गये। क्या मैं सरदार हुक्म सिंह और सरदार भोपेन्द्र सिंह मान और उनके विचारों के अन्य व्यक्तियों से पूछ सकता हूं कि क्या हमारी पिछड़ी हुई अवस्था और रक्षा कवचों की आवश्यकता हमारी उच्चतर साक्षरता और अधिक दक्षता के कारण है? इसके अतिरिक्त, आई.ए.एस. के लिये गत दो वर्षों में जो दो प्रतियोगिता परीक्षायें हुई थीं उनमें सिख अभ्यर्थियों को संख्या देश में हमारी जनसंख्या के अनुपात से कम नहीं रही। यह याद रखना चाहिये कि ये दोनों परीक्षायें कठिन समय पर हुई थीं जबकि सिख सम्प्रदाय के बहुत से लोग विभाजन के कष्टों और कठिनाइयों से उत्पीड़ित थे और विस्थापित व्यक्तियों को ऊंची परीक्षाओं के लिये बहुत अच्छी तैयारी करने का आवश्यक वातावरण ही उपलब्ध नहीं था। मुझे पूरी आशा और भरोसा है कि विस्थापित व्यक्तियों के पुन:स्थापन के पश्चात् हमारे नवयुवक देश की सेवा के लिये अवसर प्राप्त करने के लिये और भी अच्छे परिणाम प्राप्त करेंगे।

सरदार हुक्म सिंह ने यह एक आर्थिक सत्य ही कहा है कि सिखों के दो मुख्य पेशे कृषि और सेना हैं। उन्हें खेती के संबंध में तो विभेद की शिकायत करने का कोई अवसर ही नहीं है क्योंकि उसमें हमारे 85 प्रतिशत लोग लगे हुए हैं। सेना में हमारी विशेष स्थिति भी बनी ही रहेगी जब तक कि हमारे नैतिक और शारीरिक गुण और भौगोलिक परिस्थिति वैसी बनी रहेगी जैसी कि अब है। कोई भी देश वीरता और साहस को अपनी सेना से बाहर नहीं रख सकता, और पूर्वी पंजाब एक सीमा प्रांत है इसलिये सरकार को अवश्य बाध्य होकर वहां की जनता को सैनिक प्रशिक्षण देना होगा और दूसरी ओर से खतरों का सामना करने के लिए उन्हें पूर्णत: लैस रखना होगा और एक स्थायी जनकोष भी रखना होगा जहां से सेना के लिये समय समय पर आवश्यकतानुसार भरती की जा सके। मेरे विचार में अब समय है कि हम अपनी पतितावस्था का निरंतर राग अलापना बंद कर दें क्योंकि यह सरकारी सेवाओं में नये भरती होने वाले हमारे नवयुवकों की बुद्धिमत्ता और योग्यता का अपमान है, और जो पहले ही सरकारी सेवा में हैं उनकी कार्यक्षमता पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जब कोई कमी या अभाव न हो तब उनपर अत्यधिक जोर देने से हमारे योग्य अधिकारियों के स्वाभिमान और प्रतिष्ठा को क्षति होती है, चाहे भविष्य में उनकी उन्नति पर प्रभाव न पड़े। जहां तक सेवाओं का संबंध है, हमारा मामला अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिमजातियों के समान नहीं है, और सत्य को छिपाने या तोड़ने मोड़ने के लिये कृत्रिम प्रयास करना व्यर्थ है।

एक अन्य कृत्रिम शिकायत भी गढ़ने का प्रयत्न किया जाता है कि अल्पसंख्यक परामर्शदात्री समिति ने सिखों के पिछड़े हुए वर्गों को अनुसूचित जातियों में शामिल करने का जो निर्णय किया गया था उसे यूं ही बदल कर पटियाला और पंजाब राज्य संघ पर लागू नहीं किया गया है। मैं कहता हूं कि इससे बड़ा असत्य कुछ नहीं है। सरदार भोपिन्द्र सिंह मान ने इस मामले को जिस प्रकार रखने का प्रयत्न किया है, वास्तव में बात उसके विपरीत है और स्थिति में काफी सुधार ही हुआ

[सरदार सुचेत सिंह]

है। माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जो अल्पसंख्यकों और मूलाधिकारों संबंधी परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष थे, अपने 11 मई 1949 के प्रतिवेदन में यह लिखा था कि:—

"समिति ने सिख प्रतिनिधियों की इस सर्वसम्मत प्रस्थापना को भी स्वीकार कर लिया कि पूर्वी पंजाब में निम्न श्रेणियां, अर्थात्, मज़हबी, रामदासी, कबीरपंथी और सिक्लीगर, जो उन्हीं निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं जिनसे कि अनुसूचित जातियों के अन्य सदस्य हैं अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल की जानी चाहिये जिससे कि वे अनुसूचित जातियों को दिये गये प्रतिनिधित्व से लाभ उठा सकें।"

उस समय देशी राज्यों का पद प्रांतों के पद से विभिन्न रखने का इरादा था। किन्तु बाद में एक ही स्तर और पद स्थापित करने के निर्णय से अनुच्छेद 341 का निम्न रूप बन गया है:—

"राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श करने के पश्चात्, लोक-अधिसूचना द्वारा उन जातियों, मूलवंशों या आदिमजातियों अथवा जातियों, मूल वंशों या आदिमजातियों के भागों या उनमें के यूथों का उल्लेख कर सकेगा, जो इस संविधान के प्रयोजनों के लिये उस राज्य के संबंध में अनुसूचित जातियां समझी जायेंगी।"

इससे यह प्रतीत होता है कि पूर्वी पंजाब और प.पू.प.रा. संघ में कोई अन्तर नहीं है। अनुच्छेद 15 खंड (1) में लिखा है:

"राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इसमें से किसी के आधार पर विभेद नहीं करेगा।"

इसे देखते हुए, हमारा संविधान या देश की सरकार या इस संविधान पर आधारित देश में कोई भी राज्य पूर्वी पंजाब और प.पू.प.रा. संघ के बीच विभेद कैसे कर सकता है? मुझे भय है कि मेरे सहधर्मियों ने जो आशंकायें प्रकट की हैं वे तर्कहीन हैं और इस संविधान के समुचित उपबंधों को देखे बिना ही बना ली गई हैं।

पिछड़े हुए वर्गों सम्बन्धी आयोग के क्षेत्राधिकार और कृत्यों के विषय में जो आपत्ति है वह भी इतनी ही निराधार है। अनुच्छेद 340 के अधीन नियुक्त किया जाने वाला आयोग भारत राज्य क्षेत्र में सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों की दशाओं का तथा जिन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं उनका अनुसंधान करेगा और उन कठिनाइयों को दूर करने के लिये सिफारिशें करेगा इत्यादि इत्यादि।

सिखों के पिछड़े हुए वर्गों को इस आयोग के कार्य क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया है। समूचा सिख सम्प्रदाय तो पिछड़ा हुआ वर्ग नहीं है और सदन में उसके प्रवक्ताओं को इस बात के लिये हठ करने का कोई अधिकार नहीं है कि उसे जनता के पिछड़े हुए वर्गों में रखा जाये। यह एक तथ्य नहीं है और इस पर

अधिकांश सिख या उनके प्रसिद्ध नेता विश्वास भी नहीं करते। प.पू.प.रा. संघ के राजप्रमुख महाराज पटियाला, भारत के प्रतिरक्षा मंत्री सरदार बलदेव सिंह, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के प्रधान जथेदार उधम सिंह नागोके, कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य सरदार परताप सिंह केरों, पूर्वी पंजाब प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष ग्यानी गुरमुख सिंह मुसाफिर, पूर्वी पंजाब के समस्त पिछले और वर्तमान नेता और पूर्वी पंजाब के विधानवेत्ता सरदार हुक्म सिंह और सरदार भोपेन्द्र सिंह मान के इन विचारों और भावनाओं से सहमत नहीं हैं कि समूचा सिख सम्प्रदाय पिछड़े हुए वर्गों में शामिल होना चाहिये और उसके साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिये। जहां तक मेरा संबंध है मैं भारत के बहुमत में से हूं—किसानों में से जो उसकी जनसंख्या के 85 प्रतिशत हैं।

दुर्भाग्य से हमारे कुछ नेताओं ने अपने सार्वजनिक जीवन में कभी भी किसी लौकिक संस्था में कार्य नहीं किया है और उन्होंने सदा अपने नेतृत्व और शक्ति 'धर्म या सम्प्रदाय जोखिम में', का नारा लगा कर ही प्राप्त की है और उनके लिये कठिन है कि वे पुराने स्वभाव और आंदोलन को छोड़कर नये दृष्टिकोण को या कार्यक्रम को अपना सकें। मैं आशा करता हूं कि यदि मास्टर तारा सिंह ने कभी भी अमृतसर में नगरपालिका आयुक्त के रूप में काम किया होता और व्यवहार में देखा होता कि हिन्दू और सिख आयुक्त नगर के सब नागरिकों के स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिये समान रूप से उत्सुक हैं तो उनके कुछ कल्पित भय और संदेह, जो आज उनके मन में बहुसंख्यकों के विरुद्ध हैं, मिट जाते। एक सांस में तो वे कहते हैं कि हिन्दू और सिख जीवन-मृत्यु के साथी हैं और दूसरे सांस से वह कहते हैं कि एक दूसरे के अधीन नहीं रह सकते। यह विचित्र तर्क है किन्तु सदन में हमारे मित्रों को वे ही विचार और भावनायें प्रतिध्वनित करनी पड़ती हैं जो उनका नेता बाहर प्रकट करता है।

मैं अपने सहधर्मियों से अनुरोध करता हूं कि वे इस पारम्परिक अविश्वास और शत्रुता के आन्दोलन को समाप्त करें। यदि हम विश्वास का बीज बोयेंगे तो विश्वास का ही फल प्राप्त होगा। हम साम्प्रदायिक विचारों और नारों में लगे रहे थे और अब हम पूर्वी पंजाब में बहुसंख्यक सम्प्रदाय के भीषण सम्प्रदायवाद के विरूद्ध शिकायत कैसे कर सकते हैं, वे अब पंजाबी भाषा को भी दबा रहे हैं। हमें तो वातावरण में परिवर्तन की अपेक्षा है जहां न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व ही व्याप्त हो जिससे सबका कल्याण हो और देश की शान बढ़े। हमारे संविधान पर यह दोष लगाया जा सकता है कि उसमें एक के अतिरिक्त किसी वर्ग के प्रति अनुचित पक्षपात नहीं है, किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि उसमें किसी वर्ग या हित के विरुद्ध कोई विभेद किया गया है।

हमारे संविधान पर अध्यक्ष डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद की उच्च आत्मा का प्रभाव है, पं. जवाहर लाल नेहरू के विश्वव्यापी विचारों का प्रभाव है, सरदार वल्लभ भाई पटेल के अचक विवेक और शक्ति का प्रभाव है, डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैय्या की पारदर्शी बुद्धि का प्रभाव है, डॉक्टर अम्बेडकर की योग्यता और परिश्रम का प्रभाव है और सबसे बड़ी बात यह है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आशीर्वाद और दैवी प्रेरणा का प्रभाव है। मुझे आशा है मेरी यह प्रार्थना है कि हमारे करोड़ों

[सरदार सुचेत सिंह]

देशवासियों के इस महान स्वाधीनता पत्र से इस देश में ही नहीं, समस्त विश्व में शांति, समृद्धि और सुख की स्थापना अवश्य होगी। *(कर्तलध्वनि)*।

***श्री टी.जे.एम. विल्सन** (मद्रास: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं भी आपको, राष्ट्रपति को और समिति के प्रधान तथा सदस्यों को धन्यवाद देने में शामिल होना चाहता हूं। संविधान की आलोचना इस आधार पर की गई है कि इसमें विदेशी संविधानों से और विदेशी विचारों से बहुत कुछ लिया गया है। यह विचार एक गलत धारणा से उत्पन्न हुआ है कि हमारा देश अन्य देशों से सर्वथा स्वतंत्र है और पृथक है और इसलिये हमारे राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों के विचारों और कार्यों से कोई मतलब नहीं है। किन्तु तथ्य तो यह है—कि समस्त मानवता एक ही एकक के रूप में आगे बढ़ रही है—हां विश्व के विभिन्न देशों की प्रगति भिन्न भिन्न है क्योंकि उनकी परिस्थितियां भिन्न भिन्न हैं किन्तु सब एक ही है—लक्ष्य की ओर और एक ही दिशा में बढ़ रहे हैं और अब तक मानवता ने जो बपौती प्राप्त की चाहे समता और स्वतंत्रता और बन्धुत्व के मूलाधिकारों की या संविधान की ही बपौती—वह एक राष्ट्रों की समान बपौती है और समान सम्पत्ति है और प्रत्येक राष्ट्र उस बपौती में से अपना अंश ले लेगा और उसे ले भी लेना चाहिये और अपने अनुभवों तथा अपने संघर्षों से उस बपौती को बढ़ाता जायेगा। आज प्रत्येक देश समता की बात करता है, यह समता में हमें बहुत पहले प्राप्त हुई थी—जब मसीहत ने यह स्वतंत्रता की भावना मानवता को मानव-समाज के महानतम संकट के समय प्रदान की थी—जब कि यूनानी नगर राज्यों का पतन हुआ था, उससे पहले समता की भावना उन नगर राज्यों के लिये सर्वथा नई और अज्ञात वस्तु थी और समाज का कोई आधार नहीं था; और आज हम सब ही स्वतंत्रता की बात करते हैं, यह स्वतंत्रता कई शताब्दियों के संघर्षों, क्रान्तियों और अनुभव से हमें प्राप्त हुई है, अतएव यह आलोचना बिल्कुल गलत है, कि हमने विदेशी संविधानों से या विदेशी राष्ट्रों से बहुत कुछ लिया है।

परन्तु आज तक मानवता कितनी प्रगति कर चुकी है और हमारे संविधान में इस मानव प्रगति का कितना आभास है? चाहे उपायों और प्रणालियों में कुछ भी अन्तर हो, इस समय समस्त मानवीय विचार धारा का—साहित्य, विज्ञान, कला और दर्शन सबका संकेन्द्रण एक ही आधारभूत तत्व पर है और वह है जनसाधारण और उसका उत्थान। जनसाधारण की स्थिति ऐसी स्थिर हो गई है कि उसके शत्रु भी उसका नाम लेकर अपना प्रचार करते हैं। इसी प्रकार आज यह बात है कि प्रत्येक व्यक्ति लोकतंत्र की बात करता है यद्यपि इस अभागे शब्द का अर्थ इतना तोड़ा मोड़ा जाता है। परन्तु यह लोकतंत्र है क्या? लोकतंत्र की सबसे मूल आवश्यकता यह है कि प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार है और हमने उसे अपने संविधान में रखा है। किन्तु इस पर हमारे कुछ मित्रों ने इस आधार पर आपत्ति की थी कि वे इतने शिक्षित नहीं हैं कि देश का शासन चला सकें। उनका कहना यह है कि देश के शासन के लिये केवल मस्तिष्क की आवश्यकता है। किन्तु परिस्थितियां बदल चुकी हैं और सिद्धान्त भी बदल चुके हैं। शासन भी बदल गया है—अब शासन कोई अध्यात्म तत्व की या रहस्य की वस्तु नहीं है। आज सरकार को जनता की वास्तविक स्थिति और आवश्यकताओं को संभालना

पड़ता है, चाहे वे खाद्यान्न संबंधी हों या वस्त्र सम्बन्धी या स्वास्थ्य अथवा शिक्षा सम्बन्धी हों और जनता की इन आवश्यकताओं को जनता से अधिक समझने का दावा कौन कर सकता है? विचार तो आवश्यक है ही और मस्तिष्क भी वास्तव में अत्यावश्यक है। किन्तु यदि वह कार्यान्वित न हो, यदि वह जनता के अनुभव पर आधारित न हो तो उसमें सफलता नहीं मिल सकती। अतएव वयस्क मताधिकार का प्रयोजन प्रत्येक व्यक्ति को मताधिकार देने का प्रयोजन यह है कि कार्यवाही और विचारधारा के बीच के अन्तर को मिटाया जाये। परन्तु क्या यह पांच वर्ष में एक बार मत देने का अधिकार काफी है? लोकतंत्र का सार केवल यही नहीं है कि राजनैतिक दलों आदि का अस्तित्व रहे, किन्तु लोकतंत्र का सार यह है कि व्यक्ति देश के शासन में प्रभावी रूप में भाग ले सके। शासन में व्यक्ति का भाग जितना अधिक होगा, और जितना प्रभावी होगा, उतना ही वहां लोकतंत्र होगा, क्योंकि लोकतंत्र अभी तक एक आदर्श है जहां तक मानवता को पहुंचना है। इस दिशा में विकेन्द्रीकरण से कुछ हो सकता था, यदि हम इसकी अपने संविधान में व्यवस्था कर देते। किन्तु संविधान के संधानीय रूप को भी काफी संकीर्ण बना दिया गया है, और कभी कभी तो वह धीमी और संकीर्ण संघीयता भी नहीं रहती और एकात्मक व्यवस्था आ जाती है। कुछ वक्ताओं ने ग्राम पंचायतों का निर्देश किया है, उन प्रचीन स्वावलंबी भारतीय समाजों का—जहां कृषि और बुनाई उद्योग साथ साथ चलते थे और जो शताब्दियों के आक्रमणों और पराजयों के बावजूद भी बने रहे जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उखाड़ दिया और नष्ट कर दिया जिसकी शानदार सफलता पर गवर्नर जनरल ने 1884 में रिपोर्ट भेजी थी "भारत के मैदानों में जुलाहों की हड्डियां फैली हुई हैं।" मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो इन पंचायतों को पूर्ण या शाश्वत समझते हैं। परन्तु मेरा तो यह कहना है कि इस सभा को भारतीय समाज की उस प्राचीन, देशी प्रणाली को अपनाना चाहिये था और कोई ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये थी, जिससे कि व्यक्ति देश के शासन में प्रभावी रूप से भाग ले सकता और सत्ता का वहन चोटी से न होकर नीचे से चोटी की ओर होता। मैं व्यक्ति के इस सहयोग के लिये अनुरोध करता हूं, केवल इसी कारण नहीं कि यह लोकतंत्र के लिये अत्यावश्यक है, वरन् इसलिये भी कि केवल इसी से केन्द्र को शक्ति और क्षमता और क्षमता प्राप्त होगी, यद्यपि कुछ लोगों का यह गलत ख्याल है कि शक्ति का आधार केन्द्रीकरण है और प्रबल केन्द्र है। मैं फिर कहता हूं कि सब दृष्टिकोणों से, प्रभावी और समझदार नागरिकों का लोकतंत्र किसी भी शासन-व्यवस्था से अधिक शक्तिशाली और अधिक कार्यकुशल होता है, और लोकतंत्र की कमज़ोरी की सामान्य चर्चा नितान्त मूर्खता है।

संविधान में अनेक भाषाओं और संस्कृतियों की स्वतंत्रता के लिये उपबन्ध कर दिया है, किन्तु साथ ही साथ एक राष्ट्रभाषा के लिये उपबन्ध कर दिया गया है। इसका तर्कसंगत परिणाम राज्यों के लिये अधिक स्वायत्तता और अधिक स्वाधीनता होना चाहिये, परन्तु साथ ही एक ही शक्तिशाली राष्ट्र भी रहे। वे अनेक भाषाएं और संस्कृतियां प्रत्याभूत हो जातीं और अधिक प्रभावी हो जाती यदि ऐसे स्वतंत्र राज्यों का भी उपबन्ध रख दिया जाता और उनका निर्माण सांस्कृतिक तथा भाषा के आधार पर होता। किन्तु मैं आभारी हूं कि आंध्र प्रांत को स्वीकार कर लिया

[श्री टी.जे.एम. विल्सन]

गया है और संविधान में उसका उपबन्ध कर दिया जायेगा। परन्तु हमारे संविधान की सबसे बड़ी बात है उनका लौकिक रूप और उसमें से उत्पन्न होने वाला लौकिक राज्य। हमने राज्य के इस लौकिक रूप को स्थापित किया है और संविधान में उसका उपबन्ध किया है। किन्तु बादल आ रहे हैं, और राज्य के इस लौकिक रूप में छिपाने का प्रयत्न कर रहे हैं। मैं केवल यही प्रार्थना करता हूं और विश्वास करता हूं कि इस देश की प्रगतिशील शक्तियां, हमारे महान और प्यारे प्रधानमंत्री के नेतृत्व में, उन काले मेघों को हटा सकेंगी और हमारे देश को उस नाश और विपत्ति से बचा लेंगी जो यूरोप तथा एशिया के अधिकांश राष्ट्रों को लौकिक राज्य स्थापित करने से पहले उठानी पड़ी थीं।

मैं एक और बात का उल्लेख कर देना चाहता हूं जिसे शायद मेरे सम्प्रदाय के बहुत से लोगों ने नहीं समझा होगा। स्थान-रक्षणों को छोड़ने से चाहे हमारी कुछ भी हानि हुई हो किन्तु हमारा बहुत लाभ भी हुआ है क्योंकि उसके कारण मुख्यत: लौकिक राज्य स्थापित हो सका है जिस पर कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के रूप में हमारा अस्तित्व निर्भर है। मैं यहां अपने सम्प्रदाय के एक अभागे वर्ग के लिये आवाज़ उठाना चाहता हूं—वे हैं हरिजन ईसाई। श्रीमान, वे अछूत हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है; सवर्ण हिन्दू, जिनके साथ उन्हें अपने जीवन में प्रतिक्षण सम्पर्क में आना पड़ता है, उनके साथ अछूतों का सा व्यवहार करते ही हैं, परन्तु मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि उनके ईसाई भाई भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं, और उन बच्चों के माता-पिता हमारे पास आकर अश्रुपूर्ण आंखों से कहते हैं कि उनके बच्चों को पाठशालाओं से निकलना पड़ा है और वे शिक्षा से वंचित हो गये हैं क्योंकि उनकी छात्रवृत्तियां बन्द कर दी गई हैं, जब कि उनके भाई बहिनों के बच्चे, जिन्होंने धर्म परिवर्तन नहीं किया था, अब भी अपनी शिक्षा जारी रख रहे हैं। मुझे इस मूलाधिकार के विषय में कुछ भी नहीं कहना है कि धर्म के आधार पर उनके साथ विभेद नहीं होना चाहिये पर मैं मसौदा समिति से और सरकार से यही प्रार्थना करता हूं कि उन पर दया करे और उनकी इस शिक्षा को बीच में समाप्त न होने दे।

अब, संविधान पर यह भी आलोचना की जाती है कि उसने जनसाधारण को कुछ नहीं दिया है, कि उसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यवस्था नहीं है। श्रीमान, मेरा निवेदन है कि यह भी एक गलत ख्याल है, जो संविधान के क्षेत्र को गलत समझने के कारण है। संविधान का क्षेत्र सीमित होता है। उसका मुख्य कार्य शासन के लिये व्यवस्था निश्चित करना है, और इस संविधान में शासन के लिये व्यवस्था ही कर दी गई है, चाहे वह किसी प्रकार की हो। और कुछ अध्यायों में जो भी रियायतें या अधिकार रखे गये हैं वे केवल ऐसे हैं जो हम प्राप्त कर चुके हैं। संविधान में केवल वे ही अधिकार निहित किये गये हैं जो हम प्राप्त कर चुके हैं। यही मूल बात है जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं, क्योंकि अन्यथा, यदि हमने संविधान में कुछ अधिकार रख दिये होते, जो अभी हमने प्राप्त नहीं किये हैं, तो उससे देश का तोड़ामरोड़ा हुआ, असत्य और आडम्बरपूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है, और इससे बड़ी बात यह होती कि संविधान अक्रियात्मक बन जाता। अत: संविधान का सीमित प्रयोजन है और संविधान में

कुछ असुन्दर बातें होते हुए भी, जैसे कि मूलाधिकार के रूप में संपत्ति की रक्षा का उपबन्ध है, इससे देश को समाजवाद स्थापित करने में बाधा नहीं होगी, जैसा कि श्री सन्तानम कह चुके हैं।

स्वाधीनता और स्वतंत्रता के विषय में काफी कुछ कहा जा चुका है। हमें उस स्वाधीनता को प्राप्त करने का और उस तक पहुंचने का प्रयत्न करना चाहिये जो नकारात्मक ही नहीं है, जो किसी संयम की अनुपस्थिति का ही नाम नहीं है, वरन् वह स्वाधीनता जिससे ऐसी स्थितियां पैदा होती हैं जिनमें इस देश के प्रत्येक नर नारी को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक अवसर मिलेगा, और अभाव और भय से स्वतंत्रता होगी। और मैं यह भी कह सकता हूं कि स्वतंत्रता का मूल्य सावधानी नहीं है, वरन् कार्य अधिक कार्य है, अधिक उत्पादन है जिससे मानवता आगे बढ़े तथा सुख, स्वतंत्रता और लोकतंत्र प्राप्त करे।

***श्री एच. सिद्धवीरप्पा** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, यह बहुत हर्ष की बात है कि मैं उस स्तुति-गान में सहायोग देता हूं जो सामान्यत: मसौदा समिति और विशेषत: उसके सभापति के लिये गाया जा रहा है। श्रीमान, गत अनेक दिनों से, संविधान के गुणावगुणों पर ऐसी विस्तृत चर्चा हुई है कि कोई नई बात कहना संभव नहीं है। लगभग सब ही बातें कही जा चुकी हैं।

इस संविधान को देखने पर एक मुख्य बात मेरे दिमाग में आती है कि इस संविधान सभा के प्रथम बार समवेत होने के समय से इसमें कई परिवर्तन कर दिये गये हैं, जिनमें से कई तो घटनाओं के दबाव के कारण हुए हैं। यह देखा जा सकता है कि आरम्भ से ही इस संविधान का रुख यह है कि एक शक्तिशाली केन्द्र बने और हमारी स्थिति ही ऐसी है कि हम किसी अन्य प्रकार के संविधान की बात सोच ही नहीं सकते थे, यद्यपि नाम के लिये यह भी संधान ही है। यह भी देखा जा सकता है कि शक्तियों का ऐसा केन्द्रीकरण किया गया है कि यह संविधान एकात्मक अधिक है संधानीय कम। प्रश्न केवल यही है कि क्या केन्द्र को इतना शक्तिशाली बनाया गया है कि इसे अत्यधिक केन्द्रीयकरण कहा जा सकता है। अब कुछ लोगों की यह राय है कि केन्द्र को इतना शक्तिशाली और प्रबल बना दिया गया है कि संघभूत अंगों के पास कुछ बचा ही नहीं है, और मैं भी इस विचार से कुछ सहमत सा हूं। मसौदा समिति के सभापति ने ही 4 नवम्बर 1948 को अपनी प्रारंभिक वक्तृता में केन्द्र की प्रबलता के विषय में कहा था:—

> "वह जितना पचा सकता है उससे अधिक नहीं चबा सकता। उसकी शक्ति उसके तोल के अनुसार होनी चाहिये। उसे इतना प्रबल बनाना मूर्खता होगी कि वह अपने वज़न से ही गिर जाये।"

कुछ लोगों का यह मत है कि केन्द्र को लगभग सभी शक्तियां मिल गई हैं और एककों के पास कुछ नहीं रहा है। संविधान एकात्मक है या संधानीय, इस विषय में मुझे इतना ही कहना है।

[श्री एच. सिद्धवीरप्पा]

मैं देशी राज्य का हूं अत: मैं राज्यों के विषय में संविधान की स्थिति पर विशेष निर्देश किये बिना नहीं रह सकता। इस देश में 562 देशी राज्यों में भारत का लगभग एक-तिहाई राज्य-क्षेत्र था, 27 प्रतिशत जनसंख्या अर्थात् 8,08,80,434 लोग थे। इन राज्यों में राजनैतिक प्रगति और आर्थिक उन्नति के भिन्न भिन्न स्तर थे, कुछ राज्य भारत के उन्नत प्रान्तों के बराबर थे, चाहे उनसे अधिक उन्नत न हों, और कुछ बहुत पिछड़े हुए थे। इन देशी राज्यों की समस्या इस बालक स्वतंत्र राष्ट्र के सामने बहुत विकट रूप में थी। अंग्रेज़ों के समय में भी उन्हें राज्यों का एकीकरण करने में और उनका कोई रूप निश्चित करने में बहुत समय लगा था। राज्यों के विषय में बटलर समिति के प्रतिवेदन में लिखा था:

"राजनैतिक रूप में दो भारत है—एक तो ब्रिटिश भारत है जिस पर संसद के कानूनों और भारतीय विधान मंडल की अधिनियमितियों के अनुसार क्राउन द्वारा शासन होता है, और दूसरे हैं देशी राज्य जो क्राउन की प्रभुता के अधीन हैं फिर भी अधिकांश में नरेशों के वैयक्तिक शासन में हैं। भौगोलिक रूप में भारत एक है और अखंड है जिस पर गुलाबी और पीला रंग है। राजनीतिज्ञता की समस्या इन दोनों को साथ रखने की है।"

15 मई, 1946 को जो मंत्रि-प्रतिनिधि-मंडल योजना घोषित हुई थी उसमें भी राज्य के विषय में दो महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव था, कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रभुसत्ता समाप्त हो जायेगी और राज्यों के पास प्रतिरक्षा, संचार और वैदेशिक मामलों के अतिरिक्त शेष सभी विषय बने रहेंगे।

आप देखेंगे कि अंग्रेज़ों के इस देश से चले जाने के पश्चात्, कानूनी रूप में तो 562 राज्य भारत के अन्य भागों के समान ही स्वतंत्र हो गये थे। इस कठिनाई और दबाव के समय ही कुछ क्षेत्रों में कुछ विघटनशील शक्तियों ने अपने भद्दे सिर उठाये और उन्होंने कहा कि वे स्वतंत्र थे, यद्यपि उन्हें प्रारम्भ में ही कुचल दिया गया। इसी काल में 5 जुलाई 1949 को भारत सरकार का राज्य मंत्रालय बना और उस समय सरदार पटेल ने कहा:—

"राज्यों ने इस मूल सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है कि वैदेशिक मामलों, प्रतिरक्षा और संचार के लिये वे भारत संघ में आ जायेंगे। हम इससे अधिक कुछ नहीं चाहते कि वे इन विषयों को दे दें जिन में देश का सामान्य हित अंतर्ग्रस्त है। दूसरे शब्दों में, हम उनके स्वायत्ततापूर्ण अस्तित्व का पूर्ण सम्मान करेंगे।"

यह अत्यन्त आकर्षण और दिलचस्पी का विषय है क्योंकि इतिहास हमारी आंखों के सामने लिखा जा रहा है। यह समझना संभव नहीं है कि इन दो ही वर्षों में, किस प्रकार, यह समस्त देश जो कुमारी अंतरीप से लेकर हिमाचल तक विस्तृत है, एक प्रशासन और सरकार के अंतर्गत लाया गया है, केवल उन विषयों के सम्बन्ध में ही नहीं, वरन् सभी महत्वपूर्ण मामलों में; और इसका श्रेय, श्रीमान्,

उस महान नेता सरदार पटेल को मिलना चाहिये। जिन्होंने इस परिवर्तन को—इस रक्तहीन क्रांति को सफल बनाया है। किसी को विश्वास नहीं हो सकता था कि इतने अल्प काल में दो वर्ष में इतना महान परिवर्तन हो सकता था! केवल इतना ही नहीं कुछ उन्नत राज्यों में संविधान सभाएं बना दी गईं थीं और वे अपने कार्य में संलग्न थीं। राज्य मंत्रालय की इच्छा के अनुसार, उन संविधान सभाओं को अपना कार्य स्थगित करना पड़ा, क्योंकि यह अभीष्ट समझा गया कि समूचे भारत के लिये—चाहे प्रांत हों चाहे देशी राज्य–एक ही संविधान होना चाहिये। उन परिस्थितियों में यह संभव प्रतीत हुआ कि तथाकथित देशी राज्यों के लिये, जो प्रथम अनुसूची के भाग (ख) को देखने से पता लगेगा कि बहुत कम हैं, एक ही संविधान हो। इस समूचे देश के लिये अब एक ही संविधान है, और यह कहना गलत नहीं होगा कि यदि देशी नरेश और देशी राज्यों की प्रजा यदि पूर्ण समर्थन न करती तो यह कार्य पूरा होना आसान नहीं था। स्वयं सरदार पटेल ने अनेक बार कहा है कि इस छोटे से काल में इस रक्तहीन क्रांति को पूरा करने में नरेशों और प्रजाजनों की देशभक्ति की भावनाओं का भी हाथ था।

यह देखा जा सकता है कि कुछ उन्नत राज्यों को, वित्तीय एकीकरण के कारण कुछ राजस्व-हानि हुई है, विशेषत: मैसूर को वित्तीय एकीकरण के कारण काफी राजस्व की क्षति हो गई है। फिर भी लोगों ने प्रसन्नता से इन सबका अस्थायी असुविधाओं को, जो कई मामलों में स्थायी ही है, देश हित के लिये सहन किया। जब यह सब कुछ कहा जाता है, तब मैं यह जानना चाहता हूं कि अनुच्छेद 371 को रखकर विभेद करने का क्या औचित्य है। इसके अतिरिक्त, जब कि राज्यों की जनता ने काफी त्याग किये हैं और किसी विरोध के ही बिना समूचे भारत के शेष भागों के बराबर बन गये हैं, तब क्या 391 जैसे अनुच्छेद की कोई आवश्यकता थी—जो कि एक प्रकार से सद्व्यवहार का खंड है—जिसमें सब राज्यों पर दस वर्ष की कालावधि के लिये साधारण अधीक्षण और नियंत्रण की व्यवस्था की गई है? शायद मैं उन कारणों का पता नहीं लगा पाता। हो सकता है कि इसके लिये भारी कारण हों, किन्तु राज्यों के कुछ लोगों के दिमाग में यह भावना है: हमने ऐसा क्या किया है कि हमें इतना गिरा दिया गया है? क्या यह इस बात का पुरस्कार है कि देशी राज्यों ने इतना त्याग किया है कि वे शेष देश के स्तर पर आ गये हैं? कुछ भी हो, जहां तक मैसूर और तिरुवांकुर और कोचीन का सम्बन्ध है, वचन दिया गया है कि उन्हें इस उपबन्ध से मुक्त कर दिया जायेगा, किन्तु उन राज्यों की जनता को बहुत प्रसन्नता होती यदि इस वचन को वैधानिक मान्यता दे दी जाती है। मुझे सच्ची आशा है कि यह अनुच्छेद 391 मृताक्षर ही रहेगा।

अंत:, श्रीमान, मैं उस श्रद्धांजलि में भागी होना चाहता हूं जो इस सदन की कार्यवाही को इतनी महान योग्यता से चलाने पर आपको दी गई है।

श्री कमलापति तिवारी (संयुक्त प्रान्त: जनरल): अध्यक्ष महोदय, भारतीय संविधान के इस अन्तिम वाचन के अवसर पर पिछले छ: दिनों से वादविवाद चल रहा है। इस वादविवाद में इस संविधान की पूरी चर्चा की जा चुकी है। संविधान के स्वरूप का कदाचित कोई अंश बाकी नहीं रहा जिस पर कि माननीय सदस्यों ने कुछ न कहा हो। इन संविधान के गुण और दोषों की विवेचना भी

[श्री कमलापति तिवारी]

पूरी तरह से की जा चुकी है। इसकी विशेषताओं तथा उसके गुणों के सम्बन्ध में जो भी कहा जा सकता था, वह सब कहा जा चुका है। इसके दोष को दिखाने के लिये, इसकी त्रुटियों तथा विकारों के सम्बन्ध में जो भी बातें कही जा सकती थीं, मैं देखता हूं कि वह सब कही जा चुकी हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि छः दिनों के बाद खड़े होकर आपके सम्मुख इस संविधान के गुण अथवा दोष के सम्बन्ध में कदाचित कोई नई बात नहीं कह सकता। फिर भी मैंने साहस किया, अध्यक्ष महोदय, इस भवन का समय लेने का ऐसा साहस केवल इस विचार से किया कि यह अवसर एक ऐसा बड़ा ऐतिहासिक तथा महत्वपूर्ण अवसर है कि उसके स्मरण मात्र से हम स्पंदित हो उठते हैं। विशेषकर के हमारे ऐसे उन सैनिकों के जीवन के लिये, जिन्होंने आपके समान आदरणीय पूज्य नेताओं के चरणों में बैठ कर आज से 25-30 वर्ष पूर्व राष्ट्र की सेवा तथा देश की सेवा का व्रत लिया था और उन्होंने आपसे दीक्षा ग्रहण की थी, यह कदाचित् ऐसा अवसर है जो संभवतः पुनः कभी उपलब्ध होने वाला नहीं है। फलतः मैं भी कुछ कहने के अपने लोभ को संवरण न कर सका।

मैं कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे यह अवसर प्रदान किया कि मैं कुछ बातें आपके सम्मुख रखूं। अध्यक्ष महोदय, हममें से बहुत से लोग गत तीस वर्षों से अपने राष्ट्र तथा अपने देश के भविष्य के सम्बन्ध में एक स्वप्न देखते चले आये हैं। हमारी अपने देश के सम्बन्ध में और उसके भविष्य के सम्बन्ध में एक कल्पना भी रही है। हमारा स्वप्न और हमारी कल्पना यह थी कि हम सोचते और आशा करते रहे हैं कि एक दिन आवेगा, जब हम अपने देश के भाग्य का निर्णय बिना किसी हस्तक्षेप के स्वयं कर सकेंगे। हमारे उस स्वप्न ने, हमारी उस कल्पना ने गत 30 वर्षों में बराबर हमें प्रेरणा प्रदान की और हमने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के संघर्ष में अपनी शक्ति तथा बुद्धि के अनुकूल अग्रसर होते रहने की शक्ति प्राप्त की। आज उस तीस वर्ष के बाद कदाचित हमारा वह स्वप्न कुछ कुछ सत्य होता दिखाई दे रहा है और हमारी कल्पना भी साकार होती दृष्टिगोचर हो रही है। हमने देखा अपने देश को स्वतंत्र होते और हमने यह देखा कि जो स्वप्न तथा जो कल्पना हमने की थी कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब कि हमारा यह देश अपने भाग्य का निर्णय बिना किसी बाहरी शक्ति के हस्तक्षेप कर सकेगा, वह हमारी कल्पना भी पूरी होने जा रही है। आज हमारा यह सौभाग्य है। और हमारा जीवन वस्तुतः इस बात को सोचकर धन्य हो जाता है कि हमारे राष्ट्र का, हमारे स्वतंत्र देश का स्वतंत्र संविधान हमारे सामने उपस्थित हो रहा है। जहां तक इस संविधान के गुण-दोषों की विवेचना का प्रश्न है, मैं अत्यन्त नम्रता के साथ यह निवेदन करना चाहता हूं, सभापति जी, कि इस वाद-विवाद ने जो स्वरूप पकड़ा, उसने जो मार्ग ग्रहण किया और उसकी जो धारा प्रवाहित हुई, उससे मुझे कम से कम कोई संतोष नहीं हुआ। मैंने देखा कि संविधान के गुणों की चर्चा करते हुए एक के बाद दूसरे हमारे माननीय सदस्य उठे और संविधान की विशेषताओं की पूरी पूरी प्रशंसा करते हुए परस्पर की भारी प्रशंसा आरम्भ की तथा एक-दूसरे को बधाई के बाद बधाई देते चले गये। मुझे यह समझ में न आया कि यह परस्पर की प्रशंसा तथा परस्पर की बधाई किस लिये चल रही है। यह विधान हम सबके सामूहिक प्रयास का फल है। अपने ही किये पर यदि हम परस्पर प्रशंसा करें और अपने ही को स्वयं ही बधाई देते न थकें, तो क्या यह हमारे

लिये बड़े शोभा की बात होगी? हम भारतीय हैं और अपनी संस्कृति पर गर्व करते हैं। हमारी संस्कृति भी यही कहती है कि अपने गुणों की प्रशंसा अपने मुख से मत कीजिये और हमारी संस्कृति यह भी कहती है कि जो कुछ भले काम आपने कर डाले हैं, उस पर किसी प्रकार का अभिमान न कीजिये। फिर हमने किया क्या है, जिसके लिये अपने ही मुंह अपनी तारीफ कर रहे हैं और अपने ही आपको बधाई दे रहे हैं। अपने हाथ ही अपनी पीठ ठोंकने की यह आवश्यकता क्यों पड़ रही हैं? हमारे देश ने हममें अपना विश्वास प्रकट किया और राष्ट्र ने हमें यहां निर्वाचित करके इस आशा, आस्था और इस विचार से भेजा कि हम कदाचित् यहां उसके जीवन के लिये तथा उसके भावी विधान के लिये कोई ऐसी व्यवस्था निर्धारित करेंगे तथा उसकी एक ऐसी रूपरेखा उपस्थित करेंगे, जो न केवल उसके गौरव के अनुकूल होगी, बल्कि उसके श्रेय और अभ्युत्थान की साधिका भी बनेगी। फिर जब देश ने हमें भेजा और अपने भाग्य का सूत्र हमारे हाथों में सौंप दिया, तब उसने यह भी आशा की थी कि जो संविधान हम बनायेंगे, वह गुणों से, अच्छाइयों से, विशेषताओं से भरा हुआ संविधान होगा। आपने अवश्य ही एक ऐसा विधान बनाया, जो विभिन्न गुणों से परिपूरित है और जिसमें बहुत सी विशेषतायें भी हैं। पर उसके लिये हम बधाई किसे दें तथा किस बात की बधाई दें। देश ने विश्वास करके हमें अपने भाग्य के निर्णय का जो अधिकार प्रदान किया था, उस उत्तरदायित्व का यदि हम निर्वाह करने में सफल हुए और अपने कर्तव्य को पूरा कर सके हैं, तो यह ऐसी बात नहीं है, जिसके लिये अपने से ही अपनी बड़ाई करें। हमने तो वही किया, जिसे करने का भार हमने उठाया था। रही प्रशंसा की बात, सो स्पष्ट है कि अपनी प्रशंसा हमें स्वयं न करके यह कार्य देश के लिये ही छोड़ देना चाहिये। यह विधान कितना गुण संपन्न है और इसके लिये हम बधाई तथा प्रशंसा के पात्र हैं, या नहीं, इसपर निर्णय प्रदान करेगा राष्ट्र और तब वही प्रशंसा तथा बधाई शोभा की भी बात होगी। फलतः अन्य मित्रों की भांति बधाई देने तथा 'आप अच्छे और मैं अच्छा' कहने की जो परम्परा चल पड़ी है, उसे छोड़कर मैं संविधान की ही संक्षिप्त विवेचना में अग्रसर होता हूं। इस संविधान में कौन सी भारी विशेषता है और कौन सा महान गुण है, इसकी ओर जब दृष्टिपात करता हूं, तो यह देखता हूं कि मुख्यरूप से तीन बातें हैं, जो बराबर उपस्थित की जाती हैं। मेरे जिन साथियों ने भी इस विधान का गुणगान किया है, उन सबने बराबर प्रायः इन्हीं तीनों बातों को दुहराया है। कहा गया है कि इस विधान द्वारा हमने बालिग मताधिकार दिया है। दूसरी बात यह कही गई कि विधान ने छूतछात मिटा दिया और तीसरी बात जिस पर बड़ा गर्व किया जा रहा है, वह है पृथक् निर्वाचन को मिटा कर संयुक्त निर्वाचन की पद्धति, जिसे संविधान में स्वीकार किया गया है।

यही तीन बातें मुख्य रूप से इसकी विशेषतायें बताई जा रही हैं और इसी के लिये बधाइयां बांटी जा रही हैं। यहां तक कि कानून के प्रकांड पंडित मेरे आदरणीय सर अल्लादी ने आज प्रातःकाल जो भाषण किया, उसमें भी प्रायः इन्हीं तीन बातों को फेंट फेंट कर हमारे सामने रखा। मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि यह कोई ऐसी भारी विशेषता नहीं है, जिसके लिये मन ही हम फूले न समायें और गर्व करें तथा स्वयं अपने को ही इस कार्य के लिये बधाई दें। अरे, मैं पूछता हूं कि जब देश ने आपको निर्वाचित

[श्री कमलापति तिवारी]

करके भेजा और आप संविधान बनाने के लिये यहां आये, तो भला इतनी मोटी मोटी बातें अगर आप विधान में नहीं रखते, तो विधान बनाते किस चीज़ का? देश में बालिग मताधिकार हो, यह एक ऐसी स्वयं सिद्ध और स्वयं स्वीकृत सिद्धान्त है और एक ऐसी पहले से ही मानी हुई बात है कि उसके लिये गर्व करने की कोई बड़ी भारी आवश्यकता नहीं है। जिस महान भारतीय लोकतन्त्र की अट्टालिका आप खड़ी करने जा रहे हैं, उसकी भित्ति यदि जन अधिकार प्रस्तुत बालिग मताधिकार द्वारा न होगी, तो होगा क्या? संसार में सर्वत्र ही बालिग मताधिकार प्रचलित हो रहा है और उसी पर लोकतन्त्र का दिव्य भवन प्रतिष्ठित हुआ माना जाने लगा है। फिर क्या हम सदा से यह घोषणा नहीं करते रहे हैं कि भारत में हमें सच्चे लोकतन्त्र की ही स्थापना करनी है। हमने क्या यह दावा नहीं किया और ऐसा करके ही यहां नहीं आये कि भारत में हम जनतन्त्रात्मक लोक राज्य की स्थापना करेंगे? फिर हमने उसमें बालिग मताधिकार न रखा होता, तो करते क्या? इतना कर डालने से कोई ऐसी बात नहीं हो गई, जिसके लिये हम अपने को ही प्रशंसित समझें। कम से कम यह तो हम करते ही। यह तो एक सर्वमान्य और अतिआरंभिक तथा मौलिक बात थी, जिसे हम करते ही। हम ही क्या कोई भी इस देश का व्यक्ति, कोई भी दल, जो यहां आता और इस देश की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की रूपरेखा अंकित करने के काम को उठाता, तो कम से कम बालिग मताधिकार तो रखता ही। हम तो एक सफल विद्रोह के बाद यहां आये। उस विद्रोह का नेतृत्व हमने ही किया था। फिर हमने बालिग मताधिकार की व्यवस्था की, तो कौन सी नई और भारी बात हो गई। मैं तो कहता हूं हम नहीं, बल्कि यदि विधान की रचना का काम पुराने टोडी कहे जाने वाले लोग, अथवा दकियानूस और पूंजीपति भी करने के लिये बैठे होते, और यह काम उन्हें करने के लिये दिया गया होता, तो कम से कम बालिग मताधिकार तो वे भी प्रदान ही करते। यह तो हुई बालिग मताधिकार की बात।

अब उस दूसरी विशेषता पर विचार कर लीजिये, जिसकी चर्चा बार बार की गई है और जिसके लिये हम अपनी ही प्रशंसा अपने मुख से करते हैं और अपने आप ही अपने को बधाई देते हैं, वह है अस्पृश्यता की समाप्ति कर देने की बात। हम बड़े अभिमान से कहते हैं कि यह वह विधान है, जिसके द्वारा हमने अस्पृश्यता को पूरी तरह मिटा डाला। सभापति जी, जब हम यह सुनते हैं कि विधान में अस्पृश्यता के न रहने देने पर हम गर्व करते हैं और इसे अपनी बड़ी भारी सफलता समझते हैं, तो हमें आश्चर्य होता है। मैं पूछता हूं कि छुआछूत को हम क्या आज मिटा रहे हैं? क्या विधान में अस्पृश्यता को सभा के लिये गैर कानूनी बना कर हमने ऐसा काम किया है, जिसके लिये हमें बड़ा भारी श्रेय मिलना चाहिये? क्या यह कोई बड़ी नई बात की गई है? अरे, छुआछूत कब का मिट गया है। वह उस जमाने में मिट गया, जब बापू के मुख से छुआछूत के विरुद्ध विद्रोह की हुंकार उठी। तीस वर्ष हुए, जब बापू हमारे जीवन में अवतरित हुए और छुआछूत के विरुद्ध उन्होंने बगावत का झन्डा उठाया और कहा कि भारतीयता के मस्तक पर का यह कलंक अब मिट जाना चाहिये। वह वाणी थी, जिसके ओज और जिसकी प्रखरता ने आज से न जाने कितने वर्ष पूर्व ही अस्पृश्यता

को समाप्त कर दिया था। फिर जब आज हमने विधान बनाया, तब हमने अपने लिये यह कहा कि हमने यह कर डाला। हम पूछते हैं कि जो बापू कर गये हैं, जो सर्वमान्य हो चुका है, यदि हम उतना भी न करते, तो संसार में या अपने ही देश में कौन-सा मुंह दिखाते। इसके लिये यह कहना कि हमने कोई बड़ी भारी अनोखी बात की है, मुझे उचित नहीं प्रतीत होता। मैं पूछता हूं कि छुआछूत के साथ, बालिग मताधिकार के साथ, और कौन सी तीसरी बड़ी भारी बात हमने कर डाली, जिसके लिये हमें अभिमान करने की आवश्यकता है।

मैं समझता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि यहां जो पृथक् निर्वाचन की बात कही गई है, वह भी ऐसी ही है, जिस पर कोई बड़ा भारी अभिमान करने की बात नहीं रहती। अरे, पृथक् निर्वाचन ने इस देश का सत्यानाश कर डाला है। हमारा पिछले 150 वर्षों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत का सत्यानाश करने में पृथक निर्वाचन कदाचित जितना बड़ा शत्रु रहा है, उतना बड़ा शत्रु दूसरी कोई समस्या, दूसरा कोई प्रश्न नहीं रहा है। यह पृथक् निर्वाचन ही है, जिसके गर्भ से साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ। यह पृथक् निर्वाचन ही है, जिसके गर्भ से दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का जन्म हुआ। यह पृथक् निर्वाचन ही है, जिसके गर्भ से भारत के विभाजन का जन्म हुआ और इस देश का विखंडीकरण हुआ, विच्छेदीकरण और शरीरोच्छेद हो गया। यह सब केवल इस पृथक् निर्वाचन के कारण ही हुआ। क्या अब भी हम पृथक् निर्वाचन रखते! यदि हमने इसे मिटा डाला, तो कोई बड़ी भारी बात नहीं कर डाली, अपने संविधान में, जिसके लिये बहुत बड़ी तारीफ़ की आवश्यकता थी। मैं तो यह समझता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि हमने जो कुछ किया है और संविधान के जिन गुणों की चर्चा हम कर रहे हैं, उसके लिये हमें बड़ी भारी तारीफ़ और प्रशंसा करने की और एक-दूसरे को बधाई देने की आवश्यकता नहीं है। आज इस अवसर पर परस्पर प्रशंसा करने की नीति को छोड़कर हमें यह देखना है कि हम से जो बन पड़ा, वह तो हमने किया, पर जो नहीं किया अथवा जो नहीं कर सके, वह क्या है? उसकी तरफ हमको संकेत करना है, इसलिये कि हम समय पाकर स्वयं उन त्रुटियों को दूर कर सकें, जो किसी कारण रह गई हैं और साथ ही देश को बता सकें कि हम जो नहीं कर सके, वह क्या है। स्वयं अपनी ओर से हम यह बता दें कि हमें त्रुटियों का ज्ञान है तथा हम स्वयं अपनी ओर से आने वाली पीढ़ियों को यह बता दें कि इस विधान में कौन सी त्रुटियां रह गई हैं, कौन से दोष रह गये हैं, कौन से विकार रह गये हैं, जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है। हमें इस तरफ विशेष दृष्टिपात करना जरूरी मालूम होता है। और फिर मैं तो समझता हूं कि कोई व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, सफल तभी हो सकता है, जब अपने दोषों की तरफ दृष्टिपात करे। गांधी जी ने हमें सिखाया कि तुम अपने दोषों की ओर देखो, अपनी कमज़ोरियों की ओर देखो, तुम अपने गुणों की ओर न देखो, अपने में जो विकार हों उनकी ओर देखो और उन्हें स्वीकार करो तथा उन्हें दूर करने की चेष्टा करो। वे कहा करते थे कि व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, सबके विकास, सबकी उन्नति और कल्याण का मार्ग यही है कि भूल को बिना संकोच स्वीकार किया जाये, त्रुटियों को देखने के लिये अपनी ओर देखा जाये। फलतः अपने देश के विकास के लिये आज यह देखने की आवश्यकता है कि हमारे इस संविधान में वह कौन सी त्रुटियां रह गई हैं जिन्हें दूर किये बिना काम नहीं चल सकता।

[श्री कमलापति तिवारी]

साथ साथ यह भी देखा जाये कि वे कौन सी बातें रह गई हैं, जिनकी आवश्यकता थी और जिनकी आवश्यकता का राष्ट्र अनुभव करता था और जिन आवश्यकताओं को हम पूरी नहीं कर सके हैं। मैं तो अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन करता हूं, अध्यक्ष महोदय, कि जब इस दृष्टि से मैं इस विधान की ओर देखता हूं, तो मुझे लगता है कि यह संविधान, जिसकी रचना का उत्तरदायित्व हम सब पर रहा है, हमारे लिये संतोषजनक तथा हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य नहीं है। संभव है मेरा ऐसा कहना छोटे मुंह बड़ी बात हो, पर आज अवसर यह मांग करता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो समझ रहा है, उसे एक मात्र देश-हित को सामने रख कर कहे। इसी भावना ने मुझे ऐसा कहने का साहस प्रदान किया है। मैं मानता हूं इस बात को कि आज हमने इस संविधान की रचना एक संकट के समय की है। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि जो स्थिति हमारे देश में रही है, उस स्थिति की प्रतिच्छाया हमारे मन पर पड़ी है। हम भय से, हम शंका से, हम आशंका से प्रपीड़ित रहे हैं और उस सबका प्रतिबिम्ब इस सम्पूर्ण विधान पर पड़ा दिखाई दे रहा है। यह कारण हो सकता है इसमें दोष का, पर कारण चाहे जो हो, हमें तो अपनी त्रुटियों को देखना और कहना आवश्यक है। हमारे शास्त्र कहते हैं:

शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि।

अर्थात् शत्रु में जो गुण हों, उन्हें बखान करो और अपने में तथा गुरुजनों में भी जो दोष हो, उन्हें भी अवश्य कहो। इस दृष्टि से यदि हम विवेचना करें, तो उसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि अपने किसी गुरुजन के प्रति हम असम्मान व्यक्त कर रहे हैं। जो कमी है, उसके लिये कोई एक व्यक्ति तथा कमेटी ही उत्तरदायी नहीं है। हम सब उस त्रुटि के लिये समान रूप से ज़िम्मेदार हैं। फलतः सभापतिजी, मैं अब कुछ उन मौलिक त्रुटियों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं, जो मेरी समझ में मुख्य रूप से इस संविधान में रह गई हैं। वैसे तो विस्तार से अन्य अनेक छोटी-बड़ी त्रुटियों की चर्चा की जा सकती हैं, पर मैं उन्हें छोड़ देता हूं। मेरे पास इतना समय नहीं है कि अपनी बुद्धि के अनुसार तफसील से उन सब धाराओं और उपधाराओं की चर्चा करूं, जिनसे मुझे शिकायत है। थोड़ा सा जो समय मुझे आपकी कृपा से प्राप्त हुआ है, उसमें मुख्य मौलिक त्रुटियों की ओर ही संकेत कर देने का साहस करता हूं। पहला अत्यन्त मौलिक दोष इस संविधान का है, इसका अत्यन्त प्रचण्ड और घोर केन्द्रित स्वरूप। मुझे ऐसा लगता है कि हमने इस संविधान में जो व्यवस्था निर्धारित की है, उसके फलस्वरूप शक्ति, अधिकार और सत्ता का घोर केन्द्रीकरण केन्द्रीय सरकार में होना अनिवार्य होगा। मैं केन्द्रीकरण की इस व्यवस्था को दोषपूर्ण और खतरनाक समझता हूं। मुझे ऐसा लगता है कि केन्द्रीकरण की व्यवस्था अनिवार्यतः उन प्रवृत्तियों को उत्पन्न करती है, जो भयावह हो सकती हैं। फिर एक बात और, गत तीस वर्षों तक हमें अपने जिस नेता के पीछे चलने का सौभाग्य प्राप्त था, उसने हमें एक दृष्टि, एक कल्पना और एक विचारधारा प्रदान की। हमारे बापू प्रकाशपुंज थे और उन्होंने हमें यह बताया कि केन्द्रीयकरण चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र में हो, अथवा आर्थिक क्षेत्र में, निश्चय ही जनता जनार्दन की राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता का अपहरण करने की ओर अग्रसर होगा। यह थी एक नई कल्पना और एक

नई विचारधारा, जो उन्होंने हमें प्रदान की। उन्होंने बताया कि सच्चे लोकतंत्र का उदय ऊपर से नहीं, नीचे से होना चाहिये। अधिकार और शक्ति ऊपर कहीं केन्दित नहीं, बल्कि नीचे समाज के आधार जनमंडल में वितरित होना चाहिये। उसी स्थिति में वस्तुतः जनतन्त्र की सच्ची स्थापना हो सकती है और तभी जनता स्वतंत्रता का भोग कर सकती है। आज जो व्यवस्था हम बनाने जा रहे हैं, वह अधोमुखी है। ऐसा वृक्ष लगाया जा रहा है, जिसकी जड़ तो ऊपर है और जिसकी शाखायें नीचे की ओर हैं। गीता का ऊर्ध्वमूलमधः शाखा वाला वृक्ष आध्यात्मिक वृक्ष हो सकता है, पर राजनीतिक क्षेत्र में कोई भी तन्त्र ऐसा बने, जिसकी जड़ ऊपर हो और शाखा नीचे की तरफ, तो उस तंत्र में सच्चे जनतंत्र की स्थापना और सच्चे लोकतंत्र की स्थापना वास्तविक अवस्था में नहीं हो सकती। केन्द्रीकरण आज के इतिहास का भयावना अभिशाप है। जब उत्पादन की पद्धति का केन्द्रीकरण हुआ, उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण हुआ, तो उस पूंजीवाद का जन्म हुआ, जिसने जगत की आर्थिक स्वतंत्रता नष्ट कर डाली है। राजनीतिक क्षेत्र में जब सरकारों का केन्द्रीकरण हुआ और अधिकार तथा सत्ता केन्द्रित हुई तो उस तंत्र का लोप हो गया, जिसका जन्म फ्रांस की राज्यक्रांन्ति के बाद हुआ था। आज आप रूस की तरफ दृष्टिपात करें और देखें कि सबसे बड़े जनतंत्र और लोकतंत्र का दावा करने वाला रूस भी लोकतंत्र की प्रतिष्ठा नहीं कर सका है। वह इस कारण कि एक महाभयावनी पिशाचिनी केन्द्रित सत्ता वहां की जनता के मस्तक पर प्रतिष्ठित हुई है, जो उसके व्यक्तित्व और उसकी स्वतंत्रता का निर्दलन कर रही है। यदि आपने भारत में उस केन्द्रीकरण की प्रतिष्ठा की, तो स्मरण रखें कि उस केन्द्रीकरण का परिणाम यह होगा कि अधिकारों का केन्द्रीकरण होगा, अधिकारों का केन्द्रीकरण होने पर उसकी रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि शक्ति का केन्द्रीकरण हो और शक्ति का केन्द्रीकरण शस्त्र के आधार पर होता है और जब शस्त्र के आधार पर शक्ति का केन्द्रीकरण हुआ, तो जनता के अधिकारों का निर्दलन अवश्यम्भावी है। यह ऐतिहासिक सत्य है। आज वह खतरा हमारे संविधान में प्रत्यक्ष रूप से निहित है। भले ही आज की परिस्थितियों ने हमें बाध्य किया हो कि हम केन्द्रित सत्ता बनायें, परन्तु यह खतरा इसमें है, यह भय इसमें है, जिसकी तरफ़ दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। केन्द्रीकरण के विरुद्ध गांधीजी ने जो कल्पना हमें दी, वह इसी दृष्टि से दी थी। उन्होंने हमें बताया था कि सच्चे जनतंत्र की स्थापना के लिये उत्पादन के साधनों को विकेन्द्रित करो, उत्पादन के प्रकार को भी विकेन्द्रित करो और उसकी भित्ति पर जिस समाज की रचना करो, वह भी विकेन्द्रित हो और समाज पर जिस सत्ता की रचना हो, वह भी विकेन्द्रित हो और उसके अधिकार नीचे से ऊपर को चलें और सत्ता को वही अधिकार मिलें, जो जनता उसे प्रदान करे। हमसे कहा गया कि यह पीपुल्स कान्स्टीट्यूशन है, कामन-मैन्स कान्स्टीट्यूशन है। मैं अत्यंत नम्रता के साथ कहना चाहता हूं कि मुझे अत्यन्त अनकामनमैन्स कान्स्टीट्यूशन मालूम पड़ता है। इसकी शक्ति का केन्द्रीकरण ऊपर होता है। इसमें भले ही कहा गया हो कि जनता के हाथों में शक्ति है और वही सत्ताधिकारिणी है, परन्तु यह शक्ति ऊपर प्रतिष्ठित है, इसे आप देखें।

फिर मैं देखता हूं कि हमारे इस संविधान में भारत की आत्मा का कोई परिचय नहीं है। यह संविधान ऐसा मालूम होता है कि एकमात्र अवसर को देखकर बनाया

[श्री कमलापति तिवारी]

गया है। परिस्थितियों के भय से जो प्रतिक्रिया हमारे मन पर हुई कि न जाने कौन अराजकता कब उत्पन्न हो जाये, न जाने कौन सी परिस्थिति अभी पैदा हो जाय, न जाने स्वतंत्रता कब खतरे में पड़ जाये, उसने ही हमें प्रभावित किया और उसी के प्रभाव में पड़कर हमने ऐसा संविधान बना डाला। आज के संक्रमण काल में यह परिस्थिति हमारे सामने है, इसमें सन्देह नहीं, जब एक बनी बनाई व्यवस्था चूर होती है, एक स्थापित अट्टालिका गिरती है, तो उसके गर्जन से पृथ्वी में भी कम्पन होता है। इस कंपन से उत्पन्न स्थिति में भय और आशंका भी निर्विवाद है, स्वाभाविक है। एक महान शक्तिशाली साम्राज्य हमारे देखते देखते लुप्त हुआ है। इस संक्रमण काल में हमारे मन में भय है और आशंका है, पर इसकी प्रतिच्छाया हमारे संविधान पर पड़े, यह मैं समझता हूं, उचित नहीं हुआ है। हमने विदेशों से तो बहुत सी प्रेरणा प्राप्त की। आस्ट्रेलियन कांस्टीट्यूशन को हमने भले ही देखा हो, कनेडियन कांस्टीट्यूशन को भी भले ही देखा हो, ब्रिटेन के अलिखित कांस्टीट्यूशन को भी देखा हो, हम यह भी बहस कर रहे हों कि यह फेडरल है या यूनिटरी, किन्तु हमने भारत की आत्मा और संस्कृति और भारत के दृष्टिकोण की ओर ध्यान ही नहीं दिया। इस संविधान की रचना करते हुए हमने यह न देखा कि हमारे इस प्राचीन पुरातन देश में, जिसकी सहस्राब्दियों की संस्कृति है, जिसने राजनीतिक जीवन के रंगमंच पर बहुत अभिनय किये हैं, उसकी अपनी राजनीतिक विचारधारा भी कुछ रही है। राजनीति के क्षेत्र में हमारे इस देश ने महान प्रयोग किये हैं, जिनका इतिहास साक्षी है। हमने कभी इसकी ओर दृष्टिपात करने की इच्छा नहीं की। कैसे हम कह सकते हैं कि हमारे इसी देश में बहुतंत्र व्यवस्था नहीं रही है। आज इतिहास साक्षी है कि हमारा देश वह भूमि है, जहां कि सर्वप्रथम यदि विशुद्ध लोकतंत्र नहीं, तो बहुतंत्र की प्रतिष्ठा हो चुकी है। जिस समय सिकन्दर ने इस देश पर आक्रमण किया था, उस युग में भी भारत के पश्चिम में समस्त पांचाल की भूमि गणतंत्रों से भरी हुई थी। कपिलवस्तु का भी गणतंत्र ही था, जहां भगवान बुद्ध उत्पन्न हुए थे। लिच्छिवियों का एक बड़ा गणतंत्र था, जिससे भगवान बुद्ध का बहुत सम्बन्ध रहा था। इस देश में गणतंत्रों की महिमा हजारों वर्ष तक छाई रही है। वेदों में, उपनिषदों में, ब्राह्मणों में साम्राज्य की, वैराग्य की, अराजक राज्यों की पूरी कल्पना मिलती है। कैसे आप कह सकते हैं कि हमारे देश में गणतंत्र का, बहुतंत्र का या लोकतंत्र का ज्ञान नही रहा है। इस देश में राजनीतिक विचारों की पूरी विचारधारा बही है। महाभारत में जो कुछ महर्षि वेदव्यास ने भीष्म के मुंह से कहलवाया है, आप यदि उसकी तरफ दृष्टिपात करें, तो आप देखेंगे कि पूरा विधान मौजूद है, पूरी राजनीतिक विचारधारा है। क्या हमने कभी इसकी तरफ दृष्टिपात किया है? बाहर की तमाम चीज़ें इस संविधान में अवश्य हैं और सबसे बढ़कर चाहे आप कितना ही अस्वीकार करें, सन् 1935 के गवर्नमेंट ऑफ़ इन्डिया के काले ऐक्ट की काली छाया इस संविधान पर प्रत्यक्ष दिखाई देती है। चाहे हम इसका कितना ही विरोध करते रहे हों, पर उसकी छाया हमारे संविधान पर पड़ी है, इससे हम इन्कार नहीं कर सकते। इस प्रकार भारत का संविधान बनाते हुए हमने उसे देश की संस्कृति, परंपरा, इतिहास और राष्ट्र की आत्मा, हृदय तथा प्रतिभा से उसे दूर रखकर दूसरी मौलिक भूल की है। स्मरण रखिये कि इस सांस्कृतिक विच्छेद ने इस संविधान को न केवल अभारतीय बल्कि इसे निष्प्राण भी बना डाला है।

इसका तीसरा मौलिक दोष है, नागरिक अधिकारों पर हस्तक्षेप। आप कहते हैं कि हमने अछूतपना मिटाया है। आप पूछते हैं कि क्या हमने फंडामेंटल राइट्स की इस विधान में गारंटी नहीं की है। पर मैं पूछता हूं कि क्या फंडामेंटल राइट्स में हमने रुकावटें नहीं लगा दी हैं? क्या यह बिल्कुल सही नहीं है कि इसमें एक के बाद दूसरी ऐसी अनेक धारायें हैं, जो फ़ंडामेंटल राइट्स पर हस्तक्षेप करती हैं? और यह क्या है? यह प्रेरणा आपको कहां से मिली है? अध्यक्ष महोदय, मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि यह प्रेरणा मिली है, पुराने गवर्नमेंट ऑफ इन्डिया ऐक्ट से। यह अंग्रेज़ों का तरीक़ा रहा है कि जो चीज़ एक हाथ से दी, वही दूसरी तरफ़ से निकाल ली। यह संस्कार हमारे ऊपर उनके पड़े हैं। मैं मानता हूं कि स्टेट की सीक्युरिटी के लिये यह सब करना आवश्यक हुआ। ऐसा आप करें, लेकिन स्वीकार कर लें, इस दोष को। स्टेट की सीक्युरिटी, हमें गांधी जी ने बताया था केवल शस्त्र से और अधिकारों के अपहरण से नहीं होती है। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा था कि देश की सुरक्षा का एकमात्र मार्ग है कि प्रजा का पूर्ण पालन हो और उसकी बुभुक्षा और उसकी नग्नता और उसकी पीड़ा का विनाश हो। ऐसे राज्य की प्रतिष्ठा करो, जो सूर्य के समान है, जो पृथ्वी से रस को ग्रहण करता है और जितना ग्रहण करता है, उससे अठगुना। उसके कल्याण के लिये पृथ्वी को देता है। ऐसे राज्य की रक्षा के लिये शस्त्र की आवश्यकता नहीं, सेना की आवश्यकता नहीं। बापू ने भी हमें यही बताया कि जो राज्य केवल शक्ति के भरोसे टिके रहने की कोशिश करेगा, वह टिक नहीं सकेगा। उसका सहारा शस्त्र ही उसके लिये खतरनाक हो जायेगा। यदि शक्ति के द्वारा स्टेट कायम की जायेगी, तो वह अधिक दिन नहीं चलने की। यदि जनता के अधिकारों को अपहरण करके कोई सत्ता कायम की जाती है, तो आगे चलकर उसके लिये भयावह आशंका मौजूद रहती है। मनुष्य की प्रवृत्ति है जैसा कि कहा गया है कि 'नथिंग करप्ट्स लाइक पावर।' आज भले ही हमारे नेताओं के हाथों में इस व्यवस्था की बागडोर हो, जिनका हृदय, जिनकी आत्मा, जिनका सारा जीवन जनता जनार्दन के चरणों में अर्पित रहा है। इनसे किसी प्रकार की आशंका नहीं हो सकती। पर यही शक्ति आगे चल कर किसी ऐसे के हाथ में पड़ सकती है, जो कि इसका दुरुपयोग कर सकता है। यही खतरा है।

इस विधान का चौथा मौलिक दोष यह है कि हमने इसमें गरीबों के लिये, भारत की दरिद्र जनता के लिये कुछ नहीं किया है। आप देखें कि डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स में भी, जो हमें गारंटी दी गई है, वह पूरी नहीं दी गई है। उसमें भी यही कहा गया है कि जहां तक हो सकेगा, हम करेंगे। उसमें यह गारंटी कहां दी गई है कि देश में भुखमरी नहीं रह जायेगी और सड़कों पर एक भी भिखमंगा भविष्य में नहीं रह जायेगा? इसकी कोई गारंटी नहीं है। यह गारंटी कहां दी गई है कि देश में एक भी व्यक्ति बेकार नहीं रहेगा और काम देना सरकार का काम होगा? यह कहां हमने गारंटी दी है? हमने अपने प्रेसीडेंट की दस हज़ार तनख़ाह की ज़रूर गारंटी कर दी है। अपने संविधान के बड़े भारी पोथे में एकाउंटेंट जनरल और गवर्नर और जज इन सबकी तनख़ाह निश्चित कर दी है, लेकिन हमने यह निश्चित नहीं किया कि हमारे चपरासियों को क्या तनख़ाह मिलनी चाहिये। हमने कहां यह निश्चित किया कि हमारे देश में कम से कम वेतन क्या होना चाहिये? उदाहरण के लिये हमने यह क्यों नहीं तय कर दिया कि इस देश में

[श्री कमलापति तिवारी]

कम से कम कोई काम करने वाला 75 रुपया महीने से कम नहीं पायेगा। यदि हम ऐसा करते, तो हम इस देश की आत्मा को स्पर्श करते। आप लोगों ने ऊपर की ओर ध्यान दिया है, नीचे की ओर ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि हमारा यह संविधान निर्जीव दिखाई देता है। यह आदर्शों से अनुप्राणित नहीं हो सका है।

हमने इस देश के लिये एक भाषा स्वीकार की, पर दूसरी ओर उसके पीछे एक के बाद दूसरी ऐसी धारायें लगा दीं, जिनका एक मात्र भाव यह है कि वह भाषा, जिसे हम राष्ट्रभाषा करने वाले हैं, जल्दी से न चली आवे। अध्यक्ष महोदय, मैं आपसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि 15 वर्ष में ही हिन्दी आ गई, तो सेक्रेटरियेट की नौकरियां कैसे ठीक होंगी। सिर्फ इस अवसरवादिता पर तो हमने ध्यान दिया, पर यह नहीं सोचा कि भाषा का सम्बन्ध राष्ट्र के हृदय से, उसकी आत्मा से होता है। भाषा भावों के प्रवाह का आधार होती है, भाषा संस्कृति का आधार होती है और संस्कृति राष्ट्रों के इतिहास और उनके जीवन और उनके उत्थान और विकास का आधार हुआ करती है। भाषा और संस्कृति का कितना सम्बन्ध है। भाषा के बिना हमारी रचना की भित्ति क्या हो सकती है? हमने इस बात की ओर ध्यान न दिया और विदेशी भाषा को आज भी अपनाये रहे। आपने अपने शासन-विधान की भित्ति के लिये कौन सी भाषा खोजी है? भारत के पास कुछ और रहा हो या नहीं, परन्तु भाषा और लिपि के क्षेत्र में हमारा यह देश कभी दरिद्र नहीं रहा। इतिहास साक्षी है कि समस्त एशियाई देशों ने हमारी लिपि से सहारा लेकर अपनी लिपियों का निर्माण किया है। हमारी भाषा में ऐसा ऊंचा वांग्मय है, जिसके आगे संसार नतमस्तक है। कितनी लज्जा की बात है कि हमारे देश का विधान, जिसे हम प्रामाणिकता प्रदान करने जा रहे हैं, वह भी एक विदेशी भाषा में लिखा हुआ हो। यह ऐसे दोष हैं, जिन की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये। मैंने सोचा कि देश के प्रति यह मेरा कर्तव्य है, अपने नेताओं के प्रति मेरा यह कर्तव्य है और अपनी विधान-परिषद् के प्रति यह मेरा कर्तव्य है कि हम अपने हृदय के इन भावों को आपके सामने अर्पित कर दें और यह स्वीकार करें कि जो कुछ हम कर रहे हैं, वह सुन्दर है, पर हम अपने दोषों से अपरिचित नहीं हैं।

सभापति जी, संक्षेप में मैंने अपने हृदय के भावों को आपके सामने रख दिया है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम निराश हैं अथवा हम जो कर सके हैं, उसकी महत्ता किसी प्रकार कम है। हमने केवल इसी विचार से अपने दोषों की चर्चा की। हम देश से कह दें कि भला या बुरा जो बन पड़ा है, वह आपके सामने है। हम उससे कह दें कि हमारा प्रयास त्रुटिपूर्ण है, दोषपूर्ण है। हम इन दोषों से और त्रुटियों से अज्ञात नहीं हैं। हमें ज्ञान है, हम जानते हैं कि हमारा विकार क्या है ओर हम कहां जा रहे हैं। कभी सम्भव होगा कि हम इन दोषों का और इन विकारों का निराकरण करने में समर्थ होंगे। सभापति जी, आज हम इन दोषों और तमाम त्रुटियों को देखते हुए भी, जो कर सके हैं, उसके लिये नम्रतापूर्वक संतोष प्रकट करते हैं। इस संविधान के प्रति हमारी दृष्टि भावुक है, इसका निर्माण हमने किया है, शुद्ध नीयत और राष्ट्र के हित की दृष्टि से किया है। हम आज के अपने युग को देखकर ही प्रसन्न हैं। इस युग की तुलना हम अपने उस युग से करते हैं, जब हमने राष्ट्र की स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये

अपने महान तथा कठिन पथ पर आज से तीस वर्ष पूर्व अपनी यात्रा आरम्भ की थी। हमने उस युग को देखा है, जब एक प्राचीन राष्ट्र प्राभूत धरती पर पड़ा हुआ नाक रगड़ रहा है। वह युग था, जब इसी देश में जीवन जीने के लिये तरस रहा था। हमारी मातृभूमि दलिता, हीना, मलीना और पीड़िता हमारे सामने कराह रही थी। हमारे चारों ओर अंधकार था और हम अपने भविष्य के सम्बन्ध में निराश हो गये थे। हमने देखा कि ऐसे युग में एक देवता हमारे जीवन में अवतरित हुआ। उसकी वाणी में वह अमृत था जिसने मुर्दों में भी प्राण का संचार कर डाला। उस देवता के ओज और तेज़ ने हमें चेतना प्रदान की। उसके आयंत्रण में विप्लव का गर्जन और बलि-पथ पर अग्रसर होने की पुकार थी। उसने राष्ट्र को नया मंत्र दिया और हमारे लिये नये युद्ध की रचना की। उसकी युद्ध-प्रणाली अनूठी थी। यह युद्ध था धर्म का, सत्य का, मनुष्यता का, प्रकाश का, जो अधर्म के, असत्य के, पशुता और अंधकार के विरुद्ध छेड़ा गया। हमने देखा कि उस युद्ध के फलस्वरूप एक दिन संसार की सबसे बड़ी साम्राज्य शक्ति हमारे देखते-देखते हिमशिला की भांति गल कर वहीं अनन्त में लुप्त हो गई। हमने देखा कि एक राष्ट्र, जो रात्रि में पराधीन सोया था, जब प्रातःकाल उठा, तो उसके अन्तरिक्ष पर उदीयमान होने वाला सूर्य स्वतंत्र भारत का सूर्य था। हमारे नेत्रों के सम्मुख ही यह चमत्कार हुआ। आज उसी देवता के चमत्कार का फल है कि हम इस संविधान की रचना कर सके। फलतः हम अपने इस प्रयास की ओर भावुक दृष्टि से देख रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि देश में एक बार पच्चीस सौ वर्ष पूर्व एक विधान की रचना हुई थी, वह युग था जब चन्द्रगुप्त की भुजाओं ने उस महान् भारतीय साम्राज्य की प्रतिष्ठा की, जिसकी हुंकार ने इस देश से यूनानी शक्ति को उखाड़ फेंका। उस युग में कौटिल्य ने विधान की रचना की थी, जो सहस्रों वर्ष तक भारत के गौरव का कारण बना रहा। पच्चीस सौ वर्ष बाद यह हमारा दूसरा प्रयास है। चाहे हमारा यह प्रयास दोषपूर्ण हो या गुणपूर्ण हो, इसी विधान को हम राष्ट्र देवता के चरणों में समर्पित करते हैं। हमारा विश्वास है कि ऐसा युग आयेगा, जब हम अपने राष्ट्र में एक ऐसा जीवन का निर्माण कर सकेंगे, जो समस्त-मानव जाति को संदेश प्रदान करने का काम करेगा।

***श्री धरणिधर बसुमतारीः** (आसामः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुभव करता हूं कि मैं इस संविधान सभा को छोड़कर अपने प्रांत आसाम को तब तक नहीं लौट सकता जब तक कि मैं इस संविधान के निर्माण-कार्य के लिये डॉक्टर अम्बेडकर और मसौदा समिति की प्रशंसा में कुछ शब्द न कह लूं। मेरे विचार में मेरा यह कथन ठीक ही है कि सबको कोई न कोई आलोचना या शिकायत करनी है। यह संविधान सब वर्गों को सब दृष्टिकोणों को संतुष्ट नहीं करता और न कर ही सकता है, किन्तु अखिल भारतीय दृष्टिकोण से सब बातों पर विचार किया जाये तो यह संविधान निराशात्मक नहीं है और वास्तव में विभाजन के पश्चात् की कठिन परिस्थितियों में जैसा सर्वोत्तम संविधान बन सकता है वही यह है। संविधान में, अनुच्छेदों में, अनुसूचियों में जो कुछ लिखा है उसी से कुछ नहीं होगा। वास्तव में संविधान के प्रयोजन को जिस भावना से पूरा किया जायेगा उसी पर सब कुछ निर्भर होगा। यदि सब ही वर्ग ईमानदारी से और निस्वार्थता से सहयोग करें तो मुझे भरोसा है कि भारत ठीक मार्ग पर प्रगति करेगा।

[श्री धरणिधर बसुमतारी]

प्रगति की चर्चा करते समय, हमें यह बात सर्वथा स्पष्ट कर देनी चाहिये कि यदि हमारे राष्ट्र के बड़े भागों को जानबूझ कर पिछड़े हुए रखा जायेगा तो वास्तविक सम्भव नहीं है। उन्नत जातियों को विशेष प्रयत्न करने होंगे, विशेष त्याग करने होंगे, तभी पिछड़े हुए वर्ग ऊंचे उठ सकते हैं। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो यह विश्वास करते हैं कि पिछड़े हुए वर्गों को 10 वर्ष में साधारण स्तर पर लाया जा सकता है। यह असंभव है और यह दुर्भाग्य की बात है कि संविधान में दस वर्ष की अवधि रख दी गई है। किन्तु दस वर्ष में भी काफी कुछ किया जा सकता है यदि पिछड़े हुए वर्गों की उन्नति के लिये पर्याप्त धन रखा जाये और उसी पर सदा ध्यान दिया जाये।

संविधान में ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनके लिये आसाम की आदिमजातियों को आभारी होना चाहिये। यह तो स्वीकार करना ही होगा कि तथाकथित स्वायत्तशासी जिलों में, जहां आदिमजातीय परिषदें आदि होंगी; आदिमजातियों के विकास के लिये बहुत क्षेत्र हैं। किन्तु आसाम की जो आदिमजातियां मैदानों में और चाय बागानों में हैं उनके विषय में मुझे संतोष नहीं है। स्वायत्तशासी जिलों के बाहर भी उनमें से लाखों रहते हैं। उनका क्या होगा? क्या उन्हें किसी संरक्षण की और विशेष व्यवहार की अपेक्षा नहीं है? मुझे आसाम के मैदानों वाले आदिम लोगों के विषय में जरा भी संतोष नहीं हैं। मुझे अच्छी तरह पता है कि उनकी अब तक कैसी उपेक्षा और शोषण हुआ है, और मेरे ख्याल में, उनका दमन होता रहेगा, जब तक कि उनकी उन्नति के लिये विशेष प्रयत्न न किये जायें। सच बात तो यह है कि उन्हीं के विरूद्ध उनकी सहायता करनी होगी। स्थिति ऐसी है कि वे मैदानों के अन्य लोगों का मुकाबला नहीं कर सकते।

उनकी उन्नति की गति तेज़ होनी चाहिये। नियुक्तियों के ही प्रश्न को लीजिये। यह कहने से कोई लाभ नहीं है कि इतने आदिमजातीय लोगों को जंगल के काम में लगा दिया गया है। आदिमजातीय लोगों को ऊंची से नीची सभी सेवाओं में नियुक्त करना होगा, केवल प्रांतों में ही नहीं, केन्द्र में भी। केवल इतना ही नहीं हो कि उनकी नियुक्तियों के लिये न्यूनतम स्थान नियत किये जायें, वरन् उनकी पदोन्नति का भी ध्यान रखना चाहिये जिससे कि वे जहां के तहां न रह जायें। ऐसा तभी होगा जब कि उन्नत वर्ग कुछ त्याग करेंगे। उन्हें पीछे हटना होगा और आदिमजातीय लोगों को आगे बढ़ना होगा। जब यहां उन्नत सम्प्रदाय यह कहते हैं कि वे आदिमजातियों को अपने स्तर पर लाना चाहते हैं, तो क्या उनका सचमुच यह आशय है कि वे शिक्षित आदिमजातीय लोगों के लिये मार्ग देने के लिये तैयार हैं? प्रतियोगिता के आधार पर तो सुधार नहीं होगा। जिन वर्गों का सेवाओं पर अधिकार हो गया है वे ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि उनकी प्रभुता जोखिम में न पड़े। मेरे विचार में प्रशासन की कुशलता की युक्तियां वर्गों के या प्रादेशिक स्वार्थों को बनाये रखने के लिये आडम्बर मात्र हैं। ब्रिटिश शासन में कुछ लोगों पर कृपादृष्टि थी और उन्हें नौकरियां मिल जाती थीं, ठेके और विशेषाधिकार मिल जाते थे; सैनिक और असैनिक का भेद भी रखा गया था। स्वतंत्र भारत में ऐसे भेदभाव को कोई स्थान नहीं होगा। मैं जानता हूं कि इस संविधान से वे लोग

संतुष्ट नहीं हैं जिन्हें रियायतों की आदत पड़ गई हैं। ऐसे लोग लोकतंत्र का कुछ और ही अर्थ मानते हैं।

श्रीमान, फिर भी स्थिति निराशाजनक नहीं है। मुझे यह विश्वास है कि संविधान पर लोकतंत्रात्मक ढंग से अमल हो सकता है, यदि नेता अपने अधिकारों से अधिक आदर दूसरों के अधिकारों का करें। आदिमजातीय लोग निस्संदेह इस संविधान को सफल बनाने में अपना सहयोग देंगे और मुझे आशा है कि दूसरे भी उनके मार्ग में बाधा नहीं डालेंगे।

श्रीमान, सब जानते हैं कि राष्ट्रपिता गांधी जी रामराज्य स्थापित करना चाहते थे और मेरे विचार में वे ऐसा संसार चाहते थे जहां धनी और निर्धन में विभेद न हो, सुखी और दुःखी में विभेद न हो, और हमें उनके शिष्य होने पर गर्व है।

***श्री अरि बहादुर गुरंगः** अध्यक्ष महोदय, मसौदा समिति के प्रधान को बधाई देने में मैं अपने सहयोगियों का साथ देना चाहता हूं। कि उन्होंने इस महान कार्य को सफलता से पूरा किया है, मुझे केवल कुछ बातें कहनी हैं। पहली बात तो यह है कि यह आलोचना कि उसमें समाजवाद की स्थापना का उपबन्ध नहीं है उतनी ही अप्रासंगिक है जितनी यह शिकायत व्यर्थ है कि उसमें तानाशाही का मार्ग खुल जायेगा। लोकतंत्र की असली कसौटी लोगों को ही यह निश्चय करने का अधिकार देना है कि वे किस प्रकार का शासन चाहते हैं। तानाशाही या समष्टिवादी साम्यवाद का प्रश्न तो पूर्णतः इस बात पर निर्भर रहेगा कि वे किस प्रकार संविधान को क्रियान्वित करेंगे। संविधान में लोगों की इच्छा के अनुसार लगातार बहुत से रूपभेद होंगे। संविधान में ऐसे उपबन्ध ही रखे गये हैं। श्रीमान, मैं व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव करता हूं कि संविधान एक पवित्र सी चीज़ है जो भावी संतति को प्रेरणा देता है। यह विश्वास और जीवन-दर्शन का प्रतीक होता है। अतएव हमें उनके उपदेश को नहीं भूलना चाहिये। अन्त में, श्रीमान, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे संविधान के विषय में अपने विनीत विचारों को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान किया। जय हिन्द।

***श्री दीप नारायण सिंह** (बिहारः जनरल): सभापति जी, इस अवसर पर जब हम हिन्दुस्तान के लिये एक विधान पास करने जा रहे हैं। बहुत अदब से मैं अपनी श्रद्धांजलि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को देता हूं, जिनकी कठिन तपस्या और अद्भुत कार्य-कुशलता से हमारे देश को आजादी मिली। साथ ही, मैं उन असंख्य नर-नारियों को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम में हमारा साथ दिया, अनेक यातनायें सहीं और समय समय पर कठिन से कठिन कुर्बानियां कीं। जिस विधान को हम पास करने जा रहे हैं, वह विधान हमारे देश के इतिहास में एक अपूर्व सी चीज़ होगी। इस विधान की धाराओं के आधार पर हमारे देश का राष्ट्रीय जीवन बनेगा। इस जिले में इस विधान को एक बहुत पत्र और बड़े महत्व की चीज़ समझता हूं। मैं चाहता हूं कि हर एक भारतवासी इस विधान को इसी दृष्टि से देखे। मैं मानता हूं कि इस विधान में अनेकों त्रुटियां हैं। इसमें सुधार के काफी स्थान हैं। पर इस विधान में ऐसी खूबियां हैं, जिनको अपने विधान में पाकर कोई भी देश अपने को धन्य मान सकता है। अब हम लोगों को सच्चे

[श्री दीप नारायण सिंह]

हृदय से, सच्ची भावना से इस विधान को काम में लाने का यत्न करना चाहिये और इससे जितना फायदा देश को हो, पहुंचाने की कोशिश करनी चाहिये। अगर हम सच्चे मन से इस विधान को काम में लाने की कोशिश करेंगे, तो इसमें जो त्रुटियां रह गई हैं, उनको हम हटा सकेंगे और जब कभी सुधार करने की जरूरत होगी, तब आसानी से सुधार कर लेंगे। मैं अब इस विधान पर दो चार शब्द एक साधारण मनुष्य के दृष्टिकोण से कहना चाहता हूं। गांव का रहने वाला एक साधारण मनुष्य जब इस विधान के पन्ने को उलटेगा, तो वह विधान की खूबियों को देखना शायद पसन्द नहीं करेगा। वह विधान की गहराइयों में जाना पसन्द नहीं करेगा। वह तो यह देखना चाहेगा कि उसकी जरूरत की चीज़ें विधान में मौजूद हैं या नहीं। वह यह जानना चाहेगा कि यह विधान उसके लिये स्वास्थ्यकर भोजन, वस्त्र, सुन्दर स्वास्थ्य तथा उचित शिक्षा की गारंटी देता है या नहीं। मैं कहना चाहता हूं कि गांव के रहने वाले और साधारण मनुष्य उस गारंटी का इसमें अभाव पायेंगे। हां विधान में कहा गया है कि दस साल के भीतर शिक्षा का प्रबन्ध इस तरह से किया जायेगा, ताकि 14 साल की आयु तक पहुंचते-पहुंचते सभी बालक और बालिकायें शिक्षा पा सकें। उनसे अधिक उम्र वालों को इस विधान मे कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन भोजन, वस्त्र तथा सुन्दर स्वास्थ्य की किसी भी तरह गारंटी इस विधान में नहीं है। मैं जानता हूं और सब जानते हैं कि हमारा देश गांवों का देश है, हमारी जनता गांवों में बसती है, मैं कह सकता हूं कि दुनिया के बड़े बड़े देश शहरों के देश हैं, लेकिन मेरा देश तो गांवों का देश है। हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति गांवों में ही है और अभी भी जो कुछ भी हमारी सभ्यता या संस्कृति बची हुई है, वह गांवों के पुण्य-प्रताप से ही बची हुई है। लेकिन इस विधान में गांवों की प्रधानता तो अलग रही, उसका कोई स्थान भी नहीं है। हां, मैंने देखा है कि एक छोटे से आर्टिकिल में गांवों की पंचायत की चर्चा की गई है; लेकिन वह केवल याद मात्र है। गांवों की रूपरेखा क्या होगी, गांवों का स्थान भविष्य में क्या होगा, इसकी तरफ हमारा विधान चुप है। विधान में जिस शासन-प्रणाली की रूपरेखा दी हुई है, जिस समाज का ढांचा बनाया गया है, उसमें गांवों का कोई स्थान नहीं है। मैं तो चाहता था कि शासन के कामों में या और दूसरे दूसरे कामों में गांवों की ही प्रधानता होती और गांव को ही आधार मानकर हमारे देश की शासन की रूपरेखा बनती पर इस विधान में ऐसा नहीं हैं। मैं इसको एक भारी कमी मानता हूं। मैं समझता हूं कि बिना सोचे विचारे यह कमी आ गई है। लेकिन यह है, बहुत भारी मौलिक कमी। अगर हम चाहते हैं कि हमारे देश की काफी तरक्की हो, हमारा देश सुख और शान्ति से शीघ्र पूर्ण हो जाये, तो हमें गांवों को सभी कामों में प्रधानता देनी होगी और गांवों को ही आधार मानकर निर्माण की सभी स्कीमों को बनाना होगा, चाहे उनका सम्बन्ध शासन से हो या और दूसरे कामों से। यदि हम ऐसा न कर सकेंगे, तो हम अपने देश का पिछला दुखदपूर्ण इतिहास दुहरायेंगे। मैं चाहता हूं कि भविष्य में अपने विधान को काम में लाते समय इस त्रुटि पर हम ध्यान देंगे और राष्ट्र-निर्माण की सभी स्कीमों में गांव को ही आधार बनायेंगे।

एक बात मुझे और भी बहुत खटकती है। स्वराज्य की लड़ाई जब छिड़ी, तो हम से कहा गया कि हम आज़ादी हासिल कर सकते हैं, तो केवल एक

शस्त्र के ग्रहण करने से, और वह हथियार अहिंसा का और सत्य का था। सत्य व अहिंसा के आधार पर चल कर हमने विजय पाई और उसी की वजह से सारी दुनिया की निगाह को अपनी ओर खींच लिया। इस समय जब हमारे प्रधान मंत्री विदेशों में दौरा करते हैं या और भी हमारे प्रतिनिधि जब विदेशों में जाते हैं, तो वे अधिक से अधिक आदर के पात्र बनते हैं। मैं मानता हूं कि जो व्यक्ति विशेष बाहर जाते हैं, उनमें ऐसी योग्यता व प्रतिभा होती है, जो दूसरे के लिये वे आदर के पात्र बन जाते हैं। लेकिन मेरी राय में सबसे बड़ा कारण इस आदरभाव का यह है कि हमने अपनी गुलामी की बेड़ियों को अहिंसा के मार्ग पर चलकर काटा है और स्वराज्य पाया है और उसी के द्वारा बड़ी से बड़ी विदेशी ताक़त को अपने देश से हटाया है। लेकिन उस अहिंसा की चर्चा मात्र भी इस विधान में नहीं है। मुनासिब यह था कि इस समूचे विधान का आधार अहिंसा पर होता और तभी हम अपनी भावनाओं को और अपने विचारों को पूर्णरूप से भविष्य में काम में लाने में सफल होते। जब हम अपनी स्वाधीनता प्राप्ति की लड़ाई लड़ रहे थे, तो बार बार हम अपना मोर्चा बदलते समय अहिंसा का अमोघ मंत्र याद कराया जाता था। कोई भी प्रस्ताव पास हो, कोई भी स्कीम बने, कोई भी चुनाव का मैनीफैस्टो निकले, उसमें ऊपर से लेकर नीचे तक अहिंसा की ही मुहर रहती थी। लेकिन इतने बड़े ग्रन्थ में जिस पर हमारे देश का भविष्य-जीवन निर्भर करता है, उसमें अहिंसा व सत्य की कोई भी चर्चा नहीं है। यह बहुत मुनासिब था और यह उपयुक्त होता कि अहिंसा के भाव का भी हम एक अध्याय इसमें पूर्ण रूप से लिख डालते, ताकि आगे की जनता और इस विधान को काम में लाने वाले सब उससे रोशनी लेकर, उसकी मदद लेकर अपने समाज को, अपने राष्ट्र को बनाने में आगे बढ़ते। लेकिन विधान तो बन गया। दो-चार दिनों में यह विधान पास हो जायेगा। अब मैं अपने नेताओं से और समूचे राष्ट्र से इस बात के लिये अपील करूंगा कि इस विधान में, हालांकि अहिंसा की बात नहीं रखी गई है, लेकिन इसको काम में लाने के समय अहिंसा को वे अपना आधार ज़रूर बनायेंगे। हम यदि अहिंसा को छोड़ेंगे, तो न केवल हम अपना नुकसान उठायेंगे, लेकिन अभी तो दुनिया के लोग हमारी तरफ इस आशा से देख रहे हैं कि भारत शायद कुछ काल के बाद इस हिंसा से पीड़ित संसार में शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो, उन्हें भी दु:ख होगा। इसलिये मैं फिर से अपने देश के नेताओं से और इस देश के सब लोगों से इस बात की प्रार्थना करूंगा कि इस विधान को काम में लाते समय सत्य और अहिंसा को वे न भूलें।

***अध्यक्ष:** हम अब कल के 10 बजे तक के लिये स्थगित होंगे।

तत्पश्चात् सभा बृहस्पतिवार तारीख 24 नवम्बर 1949 के 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

GIPD–HS-321 PSD–17-12-52–320